ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 20 जुलाई 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 20 जुलाई 2025 से 26 जुलाई 2025

श्रावण कृ. 10 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 29, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

डी.ए.वी. पक्खोवाल लुधियाना में नशा मुक्त भारत अभियान

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, पक्खोवाल रोड, लुधियाना ने 'नशा मुक्त भारत' अभियान के अंतर्गत 8 जुलाई 2025 को विद्यालय परिसर में नशीले पदार्थों के दुष्प्रभाव के प्रति जागरूकता के उद्देश्य से एक सत्र आयोजित किया। दिवस का आरंभ पवित्र हवन यज्ञ से किया गया।

विद्यालय की आर्य युवा समाज इकाई द्वारा एक जागरूकता रैली का आयोजन भी किया गया, जिसमें पोस्टर और स्लोगन लेकर विद्यालय परिसर व आसपास के क्षेत्रों का दौरा किया। इस रैली का उद्देश्य समाज में नशे के विरुद्ध जन–जागरूकता फैलाना था।

इस अवसर पर फोर्टिस अस्पताल, लुधियाना के प्रसिद्ध बाल रोग विशेषज्ञ डॉ. शिवानी ग्रेवाल ने विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। डॉ. ग्रेवाल ने विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के नशीले पदार्थों की जानकारी देते हुए उनके घातक दुष्परिणामों से अवगत करवाया।

प्रधानाचार्या डॉ. सतवंत कौर भुल्लर ने कहा, 'रोकथाम ही पहली जागरूकता है।' उन्होंने विद्यार्थियों को नशीली वस्तुओं के झूठे आकर्षण से दूर रहने और निष्क्रिय जीवन शैली से बचते हुए योग, प्राणायाम और बाहरी खेलो जैसी शारीरिक गतिविधियों को अपनाने व आत्मनिर्भर तथा जागरूक नागरिक बनने की प्रेरणा दी।

कार्यक्रम का समापन 'नशे से दूर रहने की शपथ' के साथ हुआ, जिसमें सभी छात्रों व शिक्षकों ने एक स्वस्थ एवं नशामुक्त समाज की दिशा में कार्य करने का संकल्प लिया।

डी.ए.वी. सेक्टर 15ए, चंडीगढ़ में 'वन महोत्सव'

डी.ए.वी. मॉडल स्कूल, सेक्टर 15ए, चंडीगढ़ के प्रांगण में 'वन महोत्सव दिवस' बड़े ही उल्लास और उत्साह के साथ मनाया गया। ***'एक पौधा मां के नाम'*** विषय पर केंद्रित इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य वृक्षारोपण और पर्यावरण संरक्षण के महत्व के प्रति जन जागरूकता बढ़ाना और प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति से जोड़ना था।

इस आयोजन की प्रेरणा विद्यालय के चैयरमैन आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी जी से मिली।

बच्चों ने वन महोत्सव पर आधारित कविताओं, भाषणों, नाटकों और नृत्यों की मनमोहक प्रस्तुतियां दीं, जिन्होंने सभी का मन मोह लिया।

प्रधानाचार्या श्रीमती अनुजा शर्मा ने अपने वक्तव्य में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि वन महोत्सव केवल पेड़ लगाने का उत्सव नहीं है, बल्कि यह हमारी भावी पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ और टिकाऊ वातावरण बनाने का संकल्प भी है। उन्होंने विद्यार्थियों को वन महोत्सव के इस कार्यक्रम पर अपने ग्रह को हरा–भरा और स्वस्थ बनाए रखने की शपथ दिलाई।

कार्यक्रम का शुभारंभ प्रधानाचार्या ने 'एक पौधा मां के नाम' लगाकर किया।

डी.ए.वी. नेरुल में गुरु पूर्णिमा समारोह पर श्रद्धा, संस्कार और संकल्प

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, नेरुल में गुरु पूर्णिमा उत्सव (10 जुलाई, 2025) अत्यंत हर्षोल्लास, भक्ति और गरिमा के साथ मनाया गया।

शुरुआत प्रातःकालीन प्रार्थना सभा से हुई, जिसमें भावनात्मक भजनों की मधुर धुनों से वातावरण गूंज उठा। बच्चों ने गुरु की महिमा को उजागर करते हुए सुंदर प्रस्तुतियाँ दीं।

इसके उपरांत आयोजित यज्ञ ने वातावरण को पवित्रता और आत्मिक शांति से भर दिया। मुख्याध्यापिका महोदया मुक्ता बौराई ने छात्रों को संबोधित करते हुए कहा, "गुरु ही हमारे जीवन को दिशा देते हैं। हमें अपने शिक्षकों के प्रति सदैव कृतज्ञ रहना चाहिए, क्योंकि वही हमारे जीवन के प्रकाश स्तंभ होते हैं।"

प्राइमरी के छात्रों ने हर्बल गार्डन का निर्माण कर एक अनूठी पहल की। उन्होंने तुलसी, नीम, गिलोय, ब्राह्मी एलोवेरा जैसे औषधीय पौधों का रोपण कर यह संदेश दिया कि प्रकृति भी हमारी शिक्षक है।

नर्सरी और के.जी. कक्षा के छात्रों ने गुरु–शिष्य परंपरा को सजीव झांकी के माध्यम से प्रस्तुत किया। भगवान गणेश और महर्षि वेदव्यास, एकलव्य और द्रोणाचार्य, महात्मा हंसराज जैसे महापुरुषों की झांकी ने दर्शकों को भारतीय ज्ञान परंपरा की गौरवशाली विरासत से परिचित कराया।

इस उत्सव निःसंदेह एक ऐसा मंच बना, जहाँ बच्चों में आदर, अनुशासन, पर्यावरणीय चेतना और आध्यात्मिक भावना का समावेश हुआ।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 20 जुलाई 2025 से 26 जुलाई 2025

दम्पती का कर्तव्य

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

प्राचीं प्राचीं प्रदिशमारभेथाम्, एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ, तस्य गुप्तये दंपती संश्रयेथाम्।।

अथर्व 12.3.7

ऋषिः यमः। देवता स्वर्गः, ओदनः, अग्निः। छन्दः त्रिष्टुप्।

● (**दंपती**) हे पति–पत्नी! [तुम दोनों] (**प्राचीं प्राचीं प्रदिशं**) अगली–अगली प्रकृष्ट दिशा को (**आरभेथां**) ग्रहण करो। (**एतं लोकं**) इस गृहस्थ आश्रम को (**श्रद्–दधानाः**) श्रद्धावान् लोग (**सचन्ते**) प्राप्त करते हैं। (**वां**) तुम दोनों की (**यत्**) जो [वस्तु] (**अग्नौ**) अग्नि में (**परिविष्टं**) डाली जाकर (**पक्वं**) परिपक्व हो गई है (**तस्य**) उसके (**गुप्तये**) रक्षण के लिए (**संश्रयेथाम्**) एक–दूसरे का आश्रय लो।

● हे वर–वधू! तुम परस्पर विवाह–सूत्र में परिणद्ध हुए हो। पर क्या तुम गृहस्थाश्रम का उत्तरदरयित्व और कर्तव्य भी जानते हो? यह आश्रम श्रद्धावानों का आश्रम है, पति और पत्नी की आपस में एक–दूसरे के प्रति श्रद्धा और दोनों की मिलकर भगवान् में श्रद्धा जब होती है तब इस आश्रम का प्रसाद फलीभूत होता है। श्रद्धा में समर्पण का भाव जुड़ा हुआ है। पति–पत्नी एक–दूसरे को आत्म–समर्पण करते हैं और दोनों मिलकर परम प्रभु को आत्म–समर्पण करते हैं। श्रद्धा और समर्पण कितने पवित्र शब्द हैं! गृहस्थ दम्पती यदि इन शब्दों का मर्म समझकर आचरण करें, तो उनका गृहस्थाश्रम सौरभ बखेरने लगता है।

हे दम्पती! तुम दोनों आगे–आगे की प्रकृष्ट दिशा की ओर बढ़ते चले जाओ। तुम ब्रह्मचर्याश्रम की साधना कर चुके हो। इस बात को मत भूलो कि यह गृहस्थाश्रम भी साधना का ही आश्रम है। साधना करनेवाले ही आगे बढ़ते हैं और वस्तुतः आगे पग बढ़ाना भी एक साधना ही है। निरुद्देश्य विलासमय गृहस्थ जीवन साधना–हीनों का होता है। यदि तुम गृहाश्रम में विलास और साधना को एकाकार कर सकोगे, तो निश्चय ही तुम्हारा गृहाश्रम विकास का सोपान बन सकेगा।

गृहस्थाश्रम में पति–पत्नी अग्नि प्रज्वलित करते हैं, आहिताग्नि बनते हैं। अपना सब–कुछ उन्हें उस अग्नि में परिपक्व करना होता है। अपना तन, अपना मन, अपना धन, अपना आत्मा, अपने कार्य, सबको परिपक्व करना होता है। जो परिपक्व हो गया है, उसकी सुरक्षा करनी है और जो परिपक्व नहीं हुआ है उसे परिपक्व करनें में तीव्रता से तत्पर होना है। यह परिपक्वता ही गृहस्थाश्रम की देन है। पर यह परिपक्वता भी अकेले–अकेले नहीं होती, पति–पत्नी मिलकर ही परिपक्वता सम्पादित करते हैं और मिलकर ही परिपक्व की रक्षा करने में समर्थ होते हैं।

हे गृहस्थ–जनो! स्मरण रखो, गृहस्थाश्रम श्रद्धा का, आगे–आगे बढ़ने का और परिपक्व होने का आश्रम है। अतः इस आश्रम की नींव में और इस आश्रम पर बने भवन में इन तीनों को सदा सिंचित करते रहो। तुम्हारा मंगल होगा।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

अनन्य भक्ति, ईश्वर प्रणिधान और शरणागति की चर्चा स्वामी जी ने की और बताया कि ऋषि दयानन्द ने इसी को उपासना कहा है। उपासना का फल है ईश्वर में विशेष भक्ति।

भक्त जब इस ओर अग्रसर होता है तो उसके हृदय में प्रेम–तत्त्व का उदय होता है। नारद भक्ति सूत्र से उद्धरण देकर स्वामी विवेकानन्द की मान्यता के अनुसार कहा वैराग्य, समस्त विषयों में अनासक्ति भगवान् के प्रति प्रेम से ही उत्पन्न होती है।

परमात्मा को वर लेने पर भक्त की आँखों में तथा हृदय में उसी की छवि रहती है। कबीर और रहीम ने भी यही कहा।

ईश्वर के प्रति परमप्रेम ही भक्ति है। अनन्यता क्या है ? अन्य का आश्रय छोड़ देना। **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'**।

जब सब आसक्तियाँ छोड़कर एक मात्र भगवान् की शरण ली जाती है तब प्रेममग्न साधक परमप्रिय को पुकारने लगता है ***'बनी दीन गरीब अनाथ महा, यह दासी परी शरणागत तेरे'***।

ऐसी स्थिति में किए हुए अपराध नष्ट हो जाते हैं। भक्त के आगे नेकी–ही–नेकी रहती है। अब जीवन के सब कार्य शरीर को जीवित रखने के लिए होते हैं ताकि सूक्ष्म शरीर से ईश्वर का दर्शन हो सके।

इस भगवद्प्रेम साधक की व्याकुलता चातक, सूखे खेत जैसी हो जाती है। इस व्याकुलता में चित्त के पिघलने और आनन्द के अश्रुओं से अन्तःकरण शुद्ध होता है। एक अद्भुत निर्मलता, निरभिमानता, दीनता और दयालुता से हृदय भर जाता है और हृदय में सच्ची माता, प्रियतम की सत्ता का आभास होने लगता है। ..... **अब आगे**

भक्त गया वाटिका में

भक्त चला गया वाटिका में। वहाँ नाना प्रकार के पुष्प खिल रहे थे। माली माला गूँथने के लिए फूल तोड़कर टोकरी में डाल रहा था। भक्त माली से कहने लगा :–

हार गूँथकर कहाँ जायगा
उसे ढूँढने तू माली।
देख ! इन्हीं पुष्पों के अन्दर
उसकी मूरति मतवाली।।
रूप–रङ्ग–सौरभ पराग
में भरा उसी का प्यारा रूप।
जिसके लिए इन्हें चुन–चुनकर
हार गूँथता तू अपरूप।।

फिर देखो, युग बीते, युगान्तर बीते, जन्म हुए, मृत्यु आई, फिर जन्म हुए। कितना पुराना हो गया यह संसार ! परन्तु फूलों की सुगन्ध पुरानी न हुई। श्यामल तृण–गुच्छ, नवीन पत्रावली, नई–नई कलियाँ, नई ही कोंपलें, यह सब कुछ वैसे का वैसा और यह ऊपर के अगणित तारक–तारिकाओं से विमण्डित सुनील नभोमण्डल, वह नवजात अरुण रवि की रक्त किरणें, नित्य नई कला परिवर्तन करनेवाला चन्द्र, फिर अमावस्या का घन–कृष्ण अन्धकार, ये सब नए ही बनकर आ जाते हैं। फिर यह थकी हुई दुनिया, कुम्हलाए मुखमण्डल, प्रतिदिन प्रातः तरुण, ताज़ा हो जाते हैं। कौन है वह जो प्रभात होने से पहले ही इन सबको नहला, धुला, सजा, बनाकर रख देता है ? भक्त ने देखा – यह तो उसी का प्राणप्यारा है, सारे प्राणियों, सारी वनस्पतियों, सारी ज्योतियों, अग्नियों, सूर्यों, चन्द्रों तथा तारा मण्डलों का प्राण प्रभु ही है।

भक्त फिर कहता है जब सबके पास यह पहुँचता हैं, सभी को प्राण देता है तो मेरी बारी आते ही क्या सारी प्रभुताई भूल जाती है ? क्या मैं भी इसी संसार का एक नन्हा सा अकिंचन जीव नहीं हूँ ? अब भक्त प्रेम–भक्ति में अधिक उन्मत्त हो उठता है। विचारधारा थोड़ी बदलती है। जहाँ अगाध प्रेम हो, वहीं शिकायत भी होने लगती है। भक्त ने अब वैसा रूप धारण किया और कहने लगा, तेरी लीला भी देख ली और महिमा भी, परन्तु इन दोनों से तू परे ही रहा। फिर भी तेरी महिमा के गीत तो भक्त ही गाते हैं। तुझे भगवान्

तो हम ही बनाते हैं। भक्त न हों तो भगवान् कहाँ ? तेरी सत्ता हमारी ही सत्ता से है। एक उर्दू कवि ने तो यह भी कह डाला :

ख़याल मेरे की यह बुलन्दी,
किया है पैदा खुदा को मैंने।

फिर इतना भी हठ क्या ? जब भक्त पुकार रहा है तो इस पर करुणा–कृपा–दृष्टि क्यों नहीं ?

भक्त का अल्टीमेटम

सुना है एक भक्त तो प्रेमवश रूठ ही बैठा और रूठने की सीमा से और आगे बढ़कर 'दावा दायर' कर देने की धमकी देने लगा :

तारिहौ न शम्भो ! तो
हम अम्ब की अदालत में,
नेह को वकील करि,
नालिश लगाएँगे।।
वादा सदा तारिबे को,
कीन्हो त्रिपुरारि आप,
अब इन्कार, यही दावा लिखाएँगे।
दावा जो जवाब में कहोगे,
यह पातकी है,
तो अनेक पापिन की,
नजीर दिखलाएँगे।।
ऐसे हू पै नाहिंन जो तारोगे
दिगम्बर ! तो,
कोष करुणा को,
सबै कुरक कराएँगे।।

परन्तु यहाँ तक नौबत नहीं आने की। भक्त को इतना अधीर नहीं होना होगा। अल्टीमेटम देने की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता केवल इतनी है कि भक्त या साधक अपना हृदय भगवान् के अर्पण कर दे। उसी के सामने बिक जाए। भक्त के हृदय–मन्दिर से अपने ही प्यारे प्रभु की जोत जले। शेष सारा कूड़ा–करकट उस प्रेम–अग्नि में भस्म हो जाए। भक्त के समक्ष केवल दो पदार्थ रह जाएँ – एक भक्त, दूसरा भगवान्। इसके सिवा और कोई वस्तु न रहे। भक्ति का सूर्य चढ़ता ही तब है जब बाकी सारे संसारी पदार्थों, ममताओं, आसक्तियों की काली घनघोर घटाएँ छिन्न–भिन्न हो जाती हैं। भक्ति का उदय होने से पूर्व सारे विषयों से उपरामता हो जाती है और फिर भक्ति का रंग चढ़ते ही उसे 'ईश्वर' ही की बातें प्रिय लगने लगती हैं। जब किसी युवती अथवा युवक के विवाह का प्रस्ताव हो जाता है तो यह स्वाभाविक है कि जब कभी भी युवक अथवा युवती की बात छिड़ जाए, तो युवती और युवक पूरे चाव से तन्मय होकर उसे सुनते हैं। भक्त की अवस्था भी ऐसी ही होती है। जब श्रवण–मनन करते–करते पर्याप्त समय बीत जाता है, तब अपने प्यारे प्रभु से तन्मय हो जाने की धुन सवार हो जाती है। किसी व्यक्ति के प्रति जब अनुराग बढ़ता है तो उसे देखने–सुनने तथा स्पर्श करने के लिए एक स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इसी को तो प्रेम या प्यार कहते हैं। यही प्यार जब भगवान् के प्रति हो तो फिर यही प्यार भक्ति कहलाता है। जब यह अवस्था हो जाती है तो फिर भक्त क्षणभर का भी विरह सहन नहीं कर सकता। वह चाहता है दर्शन, मिलाप और प्रभु से एक हो जाना, जैसे लोहा अग्नि की गोद में जाकर अग्निरूप हो जाता है।

परन्तु यहाँ तक पहुँचने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि भक्ति एक ही प्रकार की नहीं होती। इसके भी कितने ही रूप सामने आते हैं। भक्ति के तीन प्रकार तो ये हैं– (1) तामसी भक्ति, (2) राजसी भक्ति, (3) सात्त्विकी भक्ति। (1) तामसी भक्ति तो वह है जब मनुष्य केवल संसारी स्वार्थ–सिद्धि के लिए यत्न करता है। (2) राजसी भक्ति यह है कि सांसारिक स्वार्थों की प्राप्ति के साथ कुछ परोपकार की भी भावना हो जाती है। (3) सात्त्विकी भक्ति यह है कि केवल कर्त्तव्य जानकर या जन्म–जन्मान्तरों की एकत्रित वासनाओं को नष्ट करने के अभिप्राय से ईश्वर कृपा प्राप्त करने के हेतु भक्ति की जाए। यही भक्ति फिर परा–भक्ति तक पहुँचा देती है। परा–विद्या तथा परा–भक्ति से नित्य ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन आता है–

(1) आर्त्त – दुःख, पीड़ा, कष्ट में परित्राण की इच्छा लेकर भगवान् को पुकारनेवाले भक्त। **(2) जिज्ञासु**–प्रभु की खोज में निकले हुए भक्ति का मार्ग चाहनेवाले भक्त। **(3) अर्थार्थी**–जो भोग तथा विषयों की कामना की पूर्ति में लगे हुए हैं, तथा **(4) ज्ञानी** – जो पूरे ज्ञानवान् होकर श्रद्धा प्रेम से प्रभु–भजन तथा प्रभु–आज्ञा का पालन करते हैं और बिना किसी कामना एवं बिना किसी लोभ के सर्वथा स्वार्थ रहित होकर भगवद्–भजन में ही तत्पर रहते हैं।

अन्य दो प्रकार की भक्ति

भक्ति के अन्य दो प्रकार भी बतलाए जाते हैं–(1) साधनरूपा भक्ति, और (2) प्रेमलक्षणा भक्ति। पूरे सोच–विचार और जिज्ञासापूर्वक की हुई साधनरूपा भक्ति ज्ञान का प्रकाश कर देती है। प्रेमलक्षणा भक्ति ज्ञान की नदी से पार ले जाकर प्रभु के घने वन में प्रवेश करा देती है। प्रेमलक्षणा भक्तिवाले भक्त मुक्ति नहीं चाहते, स्वर्ग भी नहीं चाहते। वे चाहते हैं वह विरह–अग्नि, जिसमें वे गीली लकड़ी की तरह जलते रहें। उनको इसी में स्वाद आता है। ऐसे ही प्रेमी भक्त के सम्बन्ध में फारसी भाषा में कहा है :

आहे सर्दो रंग ज़र्दो चश्मेतर,
इन्तज़ारो बेक़रारी बेसबर।
कम गुफ़्तनो कम खुर्दनो ख्वाबे हराम,
आशिकारा नौ निशाँ बाशद पिसर।।

'ठण्डी आहें, पीला रंग, जलपूर्ण नेत्र, प्रतीक्षा, बेचैनी, असन्तोष, मितभाषिता, मिताहार और अनिद्रा–बेटा! प्रेमियों के ये नौ चिह्न हैं।' इस अवस्थावाले भक्त न संशय करते हैं, न शंका, न शिकायत; वे इसी अवस्था में मस्त रहते हैं। बुल्लेशाह के शब्दों में कहते हैं :

बुल्ला आशिक हो यँ रब दा,
मुलामत होवे लाख।
'लोग 'क़ाफ़र, क़ाफ़र' आखदे
तू 'आहो, आहो' आख।।

प्रेम–भक्ति का नाश

जब प्रेम की, विरह की, प्रतीक्षा की अति हो जाती है और प्रेम–भक्ति का रंग पूरा चढ़ने लगता है तब वह कितने प्यारभरे शब्दों में पुकारता है :

जो किसी के भी नहीं बाँधे बँधे,
प्रेम–बन्धन से गए वे ही कसे।
तीन लोकों में नहीं जो बस सके,
प्यार वाली आँख में वे ही बसे।

इसी प्रकार इस प्रेम–भक्ति का नशा अधिक चढ़ जाता है तो उसे बाहर देखने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। कबीर के शब्दों में भक्त घोषणा करता है :

तेरा साजन है घट माहीं,
बाहिर नैना क्यों खोले ?
कहैं कबीर सुनो भाई साधो !
साजन मिल गए तिल ओले।।

तब वह भक्त आँखें खोलना भी आवश्यक नहीं समझता। अपने ही अन्दर, अपने ही दिव्य नेत्रों की कोठरी में, प्रियतम या साजन को बिठला वह उसकी पूजा करता है :

तुझे देखें तो फिर औरों को
किन आँखों से हम देखें ?
ये आँखें फूट जाएँ, गर्चे
इन आँखों से हम देखें।।

प्रेममग्न, प्रभु की प्यारी मीरा ने क्या सुन्दर तथ्य कहा है :

और का पिया परदेश बसत है,
लिख–लिख भेजे पाती।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत हैं,
गूँज करूँ दिन–राती।।

ज्ञानी भक्त

यह भक्ति का एक रूप है। दूसरा रूप वह है, जिसमें भक्त ज्ञानवान होकर भक्ति में तत्पर होता है, और वह यह समझता है कि इस भक्ति में प्रवृत्त होने का मेरा एक लक्ष्य है। उस लक्ष्य को पूरा करने के लिए वह भगवान की भक्ति में संलग्न होता है। ऐसे भक्त को यह शिक्षा मिल चुकी है कि मानव–जीवन पाने का प्रयोजन यह है :

तस्मै त्वा युनक्ति कर्मणे वां वेषाय वाम्।।
यजु. ।।

'भक्ति करने, शुभकर्म करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही यह जन्म लिया है।' परन्तु भक्ति उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कर्म ठीक न हों। दिन–भर तो दुष्कर्म करते रहें और सायं को प्रभुभक्ति में बैठ जाएँ तो भक्ति हो ही नहीं सकेगी। जब तक यह ज्ञान नहीं कि शुभ कर्म कौन–सा है और अशुभ कौन–सा, तब तक शुभ कर्म करने की सामर्थ्य ही नहीं आ सकेगी। इसी का नाम है ज्ञान, कर्म और उपासना। पहले प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान प्राप्त हो, फिर उस ज्ञान को क्रिया में लाया जाए। यह ज्ञान केवल पुस्तकालय की अलमारियों में या सिद्धान्तों के सन्दूक ही में बन्द न पड़ा रहे, अपितु मेरे जीवन के एक–एक कर्म में वह ज्ञान चमक उठे। कर्म जब पापरहित हो जाएँगे तो फिर प्रेम–भक्ति पूर्णरूप से उदय हो जाएगी; भक्त की हृदय–तन्त्री बज उठेगी। श्री भवदेव जी के शब्दों में यह ध्वनि गूँजने लगेगी :

प्रभो! यही ले साध चला,
मैं साधन–पथ पर।
रटा करूँ तव नाम,
नित्य निष्काम निरन्तर।।
भोगों से मुख मोड़,
छोड़ मद–मत्सर सारे।
छोड़ जगत् का मोह,
टोह में लगूँ तुम्हारे।।
संत–शरण कर ग्रहण मैं,
तब गुण–गरिमा गा सकूँ।
कृपा–सिन्धु में डूबकर,
त्याग–रत्न में पा सकूँ।। 1।।
यह अन्तिम है साध,
प्रेम–पारस में पाऊँ।
बना हृदय को स्वर्ग,
विरह में उसे तपाऊँ।।
उर मेरा बन जाए
सुखद स्वर्णिम सिंहासन।
दया–दान–दम आदि रहें,
पूजन के साधन।।
मानस–मन्दिर में तुम्हें,
मैं इस बार बुला सकूँ।
अश्रुहार उपहार दे,
सर्वस्व भुला सकूँ।। 2।।

क्रमशः

स्वामी दयानन्द के विचार

● गंगाप्रसाद उपाध्याय

शंकराचार्य जी तथा रामानुजाचार्य जी मध्यकालीन भारतीय दार्शनिक आकाश के अत्यन्त प्रकाशमान नक्षत्र हैं, और समस्त भारतीय शिक्षित जन समूह क्रियात्मक रूप में दोनों में से किसी न किसी का अनुयायी है। स्वामी दयानन्द का आविर्भाव वर्त्तमान समय में विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ, वे दार्शनिक की अपेक्षा समाजसुधारक एवम् आर्यसमाज के संस्थापक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतीय दर्शन में उनकी देन नगण्य तुच्छ नहीं है। इस प्रकृत प्रश्न को सुलझाने के लिए जो समाधान उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह ओजस्वी, सीधा, स्पष्ट और प्रौढ़ है। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य की भाँति वे भी प्राचीन वैदिक दर्शन शास्त्र के भक्त हैं और अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने अनेक वैदिक ग्रन्थों की व्याख्या का यत्न किया है। वे शंकराचार्य के मायावाद का, अविद्या के सम्बन्धी या दार्शनिक भ्रम की भाँति, खण्डन करते हैं। वे रामानुजाचार्य की ब्रह्म की गोलमोल परिभाषा का सहारा नहीं लेते हैं। वे अक्षरों के उपासक नहीं हैं, और न ही वे किसी निश्चित घड़े घड़ाए काल्पनिक वाद के पुजारी हैं। सत्य ही दर्शनशास्त्र का लक्ष्य है, न कि यह और वह वाद। वे यह नहीं कहते कि संसार में बहुत्व=अनेकता भ्रम है। वे कहते हैं यदि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं, और ब्रह्मातिरिक्त सब भ्रम है तो इस भ्रम का कोई स्पष्टीकरण होना चाहिए। भ्रम कैसे उत्पन्न होता है ? और यह भ्रम किस को होता है ? इस में सन्देह नहीं कि संसार में एकता है, किन्तु एक और एकता में भेद है। यह कहना कि केवल एक ही सत्पदार्थ है, एक बात है, यह कहना कि सारे सत्पदार्थ, अनेक होते हुए भी परस्पर सम्बद्ध हैं, एक दूसरी बात है।

अनेकता तो स्पष्ट है ही–

अनेकता तो आपाततः प्रतीत हो रही है। आप इसका अपलाप नहीं कर सकते। इसे भ्रम कह लीजिए, इसे स्वप्न कह लीजिए। यह तो है। इसके समाधान (स्पष्टीकरण) करने के लिए दो वाद प्रस्तुत किए जाते हैं। शंकराचार्य जी के वाद का नाम 'विवर्त्तवाद' है अर्थात् एक सत्पदार्थ का नानात्वप्रतीतिरूप भ्रम। रामानुजाचार्य के वाद को 'परिणामवाद' कह सकते हैं अर्थात् एक का अनेक में परिणत होना।

{यस्तात्त्विकोऽन्यथाभावः परिणाम उदीरितः। अतात्त्विकोऽन्यथाभावो विवर्त्तः स उदीरितः। (वेदान्तसार 72) किसी वस्तु का यथार्थ में दूसरे रूप को धारण करना 'परिणाम' कहलाता है, किसी का अयथार्थ में दूसरा रूप धारण करना 'विवर्त कहलाता है।}

विवर्तवाद का उदाहरण स्वप्न है। स्वप्न देखने वाला एक है किन्तु वह स्वप्न में ऐसे अनेक पदार्थों को देखता है, जिनकी उससे व्यतिरिक्त (स्वप्नद्रष्टा से पृथक्) कोई सत्ता नहीं है। परिणामवाद का उदाहरण सुवर्ण है, सुवर्ण –सोना एक है, किन्तु वह रुचक, कुण्डल, स्वस्तिक आदि नाना आकारों में परिणत होता है। रामानुजाचार्य के मत में एक महाकरण अपने आप को नाना पदार्थों में परिणत करता है, वे नाना पदार्थ मिलकर ही संसार हैं। ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण भी है और उपादान भी इतनी बात शंकराचार्य जी को भी अभिमत है, वे भी ब्रह्म को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मानते हैं। यदि ऐसा है तो प्रश्न होता है कि कैसे निर्विशेष–निर्गुण ब्रह्म इस विशेषतापूर्ण गुणमय संसार को अपने में से उत्पन्न करता है।

लोकमान्य तिलक का कथन–

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपने गीतारहस्य में विस्तार से इस का विवेचन किया है। वे लिखते हैं.....

"विवर्त्तवाद का मुख्य उद्देश्य इतना ही दिखला देना है कि **एक ही निर्गुण ब्रह्म में माया के अनेक दृश्यों का हमारी इन्द्रियों को देख पड़ना सम्भव है।** यह उद्देश्य सफल हो जाने पर अर्थात् जहाँ विवर्तवाद से यह सिद्ध हुआ कि एक निर्गुण परब्रह्म में ही त्रिगुणात्मक सगुण प्रकृति के दृश्य का देख पढ़ना शक्य है, वहाँ वेदान्त शास्त्र को यह स्वीकार करने में कोई भी हानि नहीं, कि इस प्रकृति का अगला विस्तार गुण परिणाम से हुआ है।" **{हिन्दी गीता रहस्य, पृ. 242}**

ऋषि दयानन्द की मौलिक सूझ–

स्वामी दयानन्द इस वाद के मूल पर प्रहार करते हैं। वे कहते हैं, जब तक माया को एक भिन्न सत्पदार्थ न माना जाए और द्वैतवाद के लिए मार्ग का परिष्कार न किया जाए तब तक यह कहना व्यर्थ है कि एक निर्विकार ब्रह्म जिसमें किसी प्रकार की न्यूनता त्रुटि नहीं है, मायावश होकर भिन्न प्रतीत होने लगे। साँप रस्सी प्रतीत हो सकता है किन्तु उसको जो साँप से सर्वथा पृथक् तथा भिन्न है और जिसकी दृष्टि में दोष है। यदि साँप ही एक अकेला पदार्थ होता तो विवर्त या भ्रम का कोई प्रसंग ही न होता। एक बात यह भी है कि जगत् में हमें ऐसे उदाहरण तो मिलते हैं, जहाँ परिणाम के बाद विवर्त होता है किन्तु इससे उलट अर्थात् विवर्त के बाद परिणाम का कोई दृष्टान्त नहीं मिलता। यह तो सम्भव है कि दूध जो परिणाम की प्रक्रिया से दही बन चुका है, किसी समय विवर्त्त या भ्रम के कारण रूई का फाहा प्रतीत होने लग जाए। **किन्तु यह सर्वथा असम्भव है कि दही पहले विवर्त्त के कारण रूई प्रतीत हो और फिर इस प्रकार भ्रम–जनित रूई परिणाम की प्रक्रिया से, कमीज कोट का कोई दूसरा आकार धारण कर ले।** वास्तविक सत्पदार्थ और प्रतीयमान सत्पदार्थ की परीक्षा यह है कि वास्तविक सत्पदार्थ में कार्यशृंखला सम्भव है और प्रतीयमान में यह नहीं हो सकती। **मृगतृष्णिका के जल से न किसी की प्यास बुझ सकती है, और न ही इसकी बर्फ बन सकती है।** अतः स्वामी दयानन्द जी इन दोनों वादों–विवर्तवाद और परिणामवाद को अस्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि संसार में भिन्न–भिन्न अवस्थाओं के कारण भिन्न–भिन्न स्थलों में–कहीं विवर्त और कहीं परिणाम–दोनों ही कार्य करते देखे जाते हैं। एकान्ततः विवर्त्तवाद के सहारे या एकान्ततः परिणामवाद के सहारे सृष्टि की समस्या नहीं सुलझाई जा सकती। वे इन्द्रियों के साक्ष्य अर्थात् प्रत्यक्ष प्रतीति का अपलाप नहीं करते। यद्यपि वे मानते हैं कि किन्हीं प्रतिबन्धों के कारण इन्द्रियाँ भ्रान्त हो सकती हैं, किन्तु इनकी भ्रान्ति पकड़ने और इस दुर्बलता का परिहार करने का साधन हैं। इन्द्रियाँ हमें धोखा देने के लिए नहीं दी गईं। हम ही अपने किसी दोष के कारण इन्द्रियजन्य ज्ञान को कुछ और का और समझते हैं और अशुद्ध निष्कर्ष निकालते हैं। यह ठीक है कि हमारी इन्द्रियों की शक्ति परिमित है और हमारा ज्ञान बहुत कुछ अधूरा रहता है किन्तु हमारे ज्ञानार्जन में प्रत्यक्ष–इन्द्रिजन्य ज्ञान का बहुत बड़ा स्थान है, उसको न तो तिरस्कृत ही किया जा सकता है, और न ही उसका महत्त्व कम किया जा सकता है। गौडपादाचार्य का यह कहना कि 'समस्त ऐन्द्रियिक भाव दृश्य होने के कारण मिथ्या' हैं अत्यन्त भ्रामक है। **{जाग्रद्दृश्यानां भावानां वैतथ्यं दृश्यमानत्वात्।।** (गौडपादीय कारिका पर शांकरभाष्य)}

प्रत्यक्ष से आरम्भ करके और अनुमान के ऊँचे सोपानों पर आरूढ़ होकर स्वामी दयानन्द इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि 'संसार सत्य है, और कि यह केवल एक पदार्थ ब्रह्म या ईश्वर का कार्य–विकार नहीं है। वे परमात्मा, आत्मा और प्रकृति–ये तीन अनादि मानते हैं, ये तीनों अजन्मा और अविनाशी हैं, किन्तु परमात्मा, आत्मा और प्रकृति एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि परमात्मा इनका शासक और अनन्त ज्ञानवान् (सर्वज्ञ), अनन्त बलवान् (सर्वशक्तिमान्) और सर्वव्यापक है, आत्माओं की ज्ञानशक्ति विकारिणी–परिवर्तनशील है और प्रकृति जड़–ज्ञानशून्य है। यह दृश्यमान जगत् दो पदार्थों–चेतन जीवात्मा–चित् और जड़ प्रकृति–अचित् के संयोग से बना है। इन्द्रियों समेत हमारे शरीर प्रकृति से बने हैं किन्तु उनके अन्दर कार्य करने वाले आत्माओं के कारण वे जीवित बना दिए जाते हैं, शरीर का कार्य शरीर के अन्दर रहने वाले आत्मा की चेष्टा के अनुसार होता है, जैसे कि मेरी इच्छा के अनुसार ही मेरी लेखनी लिखती है। परमात्मा चित् और अचित्–आत्मा और प्रकृति से ऊपर है। एक अंश में वह चित् या आत्मा के समान है। वह जानता है और पूर्णतया जानता है किन्तु उस पर आत्मा के से बन्धन या प्रतिबन्ध नहीं हैं। आत्माओं को जो प्रत्यक्ष, अनुमान आदि द्वारा क्रम से ज्ञान होता है, परमात्मा को वह पहले ही स्वभाव से ज्ञात है। मोटे रूप में कहना हो तो यों कह सकते हैं, **'हमें ज्ञान मिलता है, और परमात्मा में ज्ञान सदा से है।'**

आत्मा और प्रकृति कैसे परमात्मा के वश–शासन में आ गए हैं, इस शंका का समाधान स्वामी जी यह देते हैं कि वे सदा से ऐसे हैं, और 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होते। यदि यह पूछा जाए कि यहीं क्यों ठहरते हो ? इसका उत्तर स्वामी दयानन्द यह देते हैं कि **मूल तत्त्वों की खोज में हम एक विशेष सीमा से आगे नहीं जा सकते।** 'अनिर्वचनीय अनादि माया' या इसी प्रकार के अन्य किसी व्यर्थ और उपहासास्पद वाद की खिलवाड़ करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि हम यहीं ठहर जाएँ और अपनी असमर्थता स्वीकार करें।

सत्य की खोज ही दर्शन का उद्देश्य–

कइयों का यह कहना है कि मनुष्य की दार्शनिक जिज्ञासा एक से अधिक तत्त्व मानने से शान्त नहीं हो सकती और कि समस्त दर्शनशास्त्र का उद्देश्य सब वस्तुओं को एक करने में है। इस आक्षेप का समाधान यह है कि दर्शनशास्त्र का उद्देश्य सत्य की खोज है, न इससे कुछ अधिक और न कुछ न्यून। **कई दार्शनिकों ने यह विपत्ति व्यर्थ ही अपने सिर सहेड़ ली है कि जैसे भी हो सब को एक ही सिद्ध कर दें जो किसी भी प्रकार एक नहीं बन सकते।** हमारा उद्देश्य सत्य की खोज

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्यसमाज, एनी बेसेन्ट और जे. कृष्णमूर्ति

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

जिस समय दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना कर देश में नवयुग का सूत्रपात किया, उस समय ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थनासमाज का यौवनकाल ही था किन्तु थियोसोफिकल सोसाइटी और आर्यसमाज की स्थापना का वर्ष (1875 ई.) तो एक ही है। 'प्रत्येक धर्म में सत्य का तत्त्व है–इस सिद्धान्त वाक्य को लेकर स्थापित इस संस्था का ईसाइयत से तीव्र मतभेद, विरोध तथा संघर्ष रहा। थियोसोफिस्टों ने पुरातन आर्य धर्म, दर्शन, उपासना तथा कर्मकाण्ड की श्रेष्ठता स्वीकार की तथा यहूदी, ईसाई, तथा इस्लाम आदि सामी (Semetic) मतों की मान्यताओं को अस्वीकार किया। कालान्तर में आर्य, बौद्ध तथा पारसी आदि प्राच्य धर्मों को अधिक गौरवान्वित करने तथा ईसाइयत की आलोचना करने के कारण पश्चिम का बृहद् ईसाई जगत् थियोसोफिस्टों का कट्टर शत्रु बन गया था। थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना के साथ ही साथ उसके संस्थापकद्वय कर्नल ऑल्काट तथा मैडम ब्लैवेट्स्की का आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द से पत्र व्यवहार हुआ। इसके द्वारा यह निश्चय किया गया कि आर्यसमाज की शाखा के रूप में सोसाइटी को मान्यता दी जाए तथा दोनों के कार्य और प्रवृत्तियाँ एक सी हों परन्तु शीघ्र ही दोनों संस्थाओं के मौलिक मतभेद प्रकट हो गए और स्वामी दयानन्द ने बम्बई में आर्यसमाज तथा सोसाइटी के परस्पर सम्बन्ध विच्छेद की सार्वजनिक घोषणा एक विशिष्ट विज्ञापन द्वारा कर दी।

वस्तुतः थियोसोफिकल सोसाइटी एक विश्व संस्था है, जिसकी गतिविधियाँ संसार के सारे देशों में फैली हुई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन होने के कारण थियोसोफिकल सोसाइटी ने सर्वधर्म–समन्वय पर ज़ोर दिया परन्तु उसके विशिष्ट सिद्धान्तों की कोई निश्चित रूपरेखा नहीं बन पाई। भूतप्रेतादि से सम्बन्धित अनेकानेक विचित्र एवं रहस्यपूर्ण गुह्य विद्याओं का प्रचार करना थियोसोफिस्टों का एक प्रिय कार्य रहा। कालान्तर में श्रीमती एनी बेसेन्ट का इस संस्था में प्रवेश एक महत्त्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई। यद्यपि श्रीमती बेसेन्ट इंग्लैण्ड में जन्मीं, पलीं और बढ़ीं तथापि उनका कार्यक्षेत्र भारत ही रहा। जिस तीव्रगति से उनकी लोकप्रियता बढ़ी उसी तेज़ी से उनकी ख्याति और प्रसिद्धि की हानि भी हुई। इसका कारण था जे. कृष्णमूर्ति नामक युवक को ईश्वरावतार के रूप में घोषित करना तथा मद्रास के न्यायालय में युवक के माता–पिता द्वारा श्रीमती बेसेन्ट के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया तद् विषयक अभियोग। वस्तुतः थियोसोफिकल सोसाइटी पढ़े–लिखे आभिजात्य वर्ग के लोगों की एक जमात के रूप में ही संकुचित हो कर रह गई। जीवन्त जनसम्पर्क के अभाव तथा व्यापक सामाजिक समस्याओं से असंपृक्त रहने के कारण सोसाइटी को लोकप्रियता नहीं मिल सकी।

{स्रोत : नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, प्रथम अजमेरीय संस्करण, पृष्ठ 21, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा}

वेदों ने कहा

● कृष्णचन्द्र गर्ग

1. ईश्वर एक है, अनेक नहीं–

(क) **न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो न अपि उच्यते। न पंचमो न षष्ठः सप्तमो न अपि उच्यते।**
अष्टमो न नवमो दशमो न अपि उच्यते।
(अथर्ववेद 13–4–16, 17,18)

अर्थ–वह परमात्मा दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ है ऐसा नहीं कहा जाता है। वह परमात्मा एक ही है।

(ख) **इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निम् आहुः अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।**
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानम् आहुः।। (ऋग्वेद 1–164–46)

अर्थ–एक ही परमात्मा को विद्वान् लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। उसे ही इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, गरुत्मान, यम तथा मातरिश्वा आदि नामों से बुलाते हैं। अल्लाह या God नहीं।

2. राक्षस कौन–

असुर्य्या नाम ते लोकाऽन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के च आत्महनो जनाः।।
(यजुर्वेद 40–3)

अर्थ–जो लोग अपनी आत्मा का हनन करते हैं अर्थात् मन में और, वाणी में और तथा कर्म कुछ और करते हैं वे राक्षस हैं तथा अज्ञान अन्धकार में फँसे हैं। मरने के पश्चात् भी वे गहरे अन्धकारमय जीवन को पाते हैं।

3. ईश्वर की सत्ता–

(क) **अन्ति सन्तं न जहाति अन्ति सन्तं न पश्यति।**
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति। (अथर्ववेद 10–8–32)

अर्थ – अन्दर बैठे ईश्वर से मनुष्य कभी अलग नहीं हो सकता। उस अन्दर बैठे ईश्वर को मनुष्य आँख से देख भी नहीं सकता। उस परमदेव ईश्वर के वेद–ज्ञान को जान जो न कभी मरता है और न ही कभी पुराना होता है।

(ख) **यः तिष्ठति चरति यः च वंचति यो निलायं चरति यः प्रतंकम्।**
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।।
(अथर्ववेद 4–16–2)

अर्थ – चाहे कोई मनुष्य खड़ा है या चल रहा है, चाहे कोई किसी को ठग रहा है, चाहे कोई किसी के पीछे छिपकर षड़यन्त्र रच रहा है, चाहे दो मनुष्य कहीं एकान्त में किसी विषय पर गुप्त चर्चा कर रहे हैं, सर्वव्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर तीसरा वहाँ उपस्थित होता हुआ सब कुछ जान लेता है।

4. कर्मफल –

(क) **न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।**
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति।।
(अथर्ववेद 12–3–48)

अर्थ–अच्छे बुरे कर्म के फल में किसी भी क्रियाकाण्ड से कोई कमी नहीं आती, न किसी की सिफारिश चलती है और न कोई मित्र साथी या सम्बन्धी कर्मफल का हिस्सा ले सकता है। जिसका कर्म है उसका फल उसे ही मिलता है और जितना है उतना ही मिलता है, कम–अधिक नहीं।

(ख) **यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।**
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुच्छति।।
(चाणक्यनीति 13–14)

अर्थ–जैसे बछड़ा हज़ारों गऊओं के बीच में खड़ी अपनी माँ के पास ही जाता है उसी प्रकार कर्मफल कर्त्ता को ही मिलता है। **दूरभाष : 01724010679**

☞ पृष्ठ 04 का शेष

स्वामी दयानन्द के ...

करके तदनुसार आचरण करना है, न कि सत्य को अपनी कल्पनाओं के अनुसार ढालना। *'जोड'* का निम्नलिखित सन्दर्भ विचारने योग्य है–

"इसमें मतभेद नहीं है कि अद्वैतवाद में बहुतों को आकर्षण है किन्तु जो इसे अंगीकार करते हैं, उन्हें आरम्भ से एक बड़ी समस्या का सामना करना है.....। वह समस्या यह है कि मूल तत्त्व का, जो एक है, और प्रतीयमान पदार्थों का, जो अनेक हैं, परस्पर क्या सम्बन्ध है ? **यदि हमें एक ही यथार्थ पदार्थ का प्रतिपादन करना है तो इस नानात्वप्रतीति का समाधान हमारे पास क्या है ?**

एक की अनेक के साथ संगति करने की समस्या के आमने–सामने होकर कई विचारकों ने एक ऐसा समाधान प्रस्तुत किया है, विशुद्ध वैयक्तिक छाप की अपेक्षा दार्शनिक छाप दिखाना जिसका उद्देश्य प्रतीत होता है, मेरे विचार में तो स्पष्टतया अनेकता तो प्रतीत हो रही है, और वे एकता के लिए आपाततः प्रमाण खोजते हैं। यतः पदार्थों के बाह्य आकार में कोई ऐसी चीज़ प्रतीत नहीं होती जो इनकी एकता का भान कराए, अतः उन्होंने यह स्वीकार किया है कि एकता की प्रतीति मानवीय आत्मा की मौलिक आवश्यकता से उत्पन्न होती और झलकती है। इस विचार के अनुसार एकता की प्रतीति का यथार्थता में कोई आवश्यक तद्रूप भाग नहीं है, अथवा यदि ऐसी कोई तद्रूपता है तो हम नहीं जान सकते कि ऐसी कोई तद्रूपता है। यह केवल मनुष्य के विचार करने की आवश्यकता का बोध कराती है, और केवल मानवीय आवश्यकता के

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

राजपूताने में प्रचार कार्य

● इन्द्र विद्यावाचस्पति

राजपूताने से स्वामी जी को बराबर निमन्त्रण आ रहे थे। चिरकाल से उनका विचार था कि राजपूताने के राजाओं का सुधार किया जाए। कई अवसरों पर ऋषि ने यह विचार प्रकट किया था कि भारत का भला तभी होगा, जब रजवाड़ों का उद्धार होगा। यदि राजा लोग सुधर जाएँ, तो प्रजा के सुधरने में क्या विलम्ब हो सकता है? यह विश्वास ऋषि के हृदय में घर कर गया था। यही कारण था कि थोड़ी देर के लिए अपने विस्तृत कार्यक्षेत्र संयुक्त प्रान्त और पंजाब को छोड़ कर के ऋषि राजपूताने की ओर रवाना हुए।

5 मई 1881 को ऋषि राजपूताने के हृदयस्थानीय अजमेर शहर में पहुँचे और धर्म का प्रचार आरम्भ किया। लगभग डेढ़ मास तक ऋषि का सिंहनाद अजमेर निवासियों के हृदयों को धर्म के मन्दिर में निमन्त्रण देता रहा। जून के अन्त में ऋषि ने अजमेर से मसूदा रियासत की ओर प्रस्थान किया। मसूदा नरेश ने स्वामी जी का बड़ी भक्ति से स्वागत किया। धर्म प्रचार का अटूट क्रम जारी रहा। इस रियासत में बहुत से हिन्दू ऐसे थे, जो मुसलमानों के राज्य समय में मुसलमान हुए राजपूतों को लड़कियाँ देने में कुछ भी संकोच नहीं करते थे। स्वामी जी ने उन लोगों को समझाया कि जिनका धर्म भिन्न है, उन्हें कन्या देकर अपनी कन्याओं को धर्मच्युत करना कभी न्याय्य नहीं है।

अंग्रेज़ के बंधुए :– मसूदा से ऋषि दयानन्द रायपुर रियासत में पहुँचे। रायपुर के ठाकुर ने बड़ा सत्कार किया और धर्म प्रचार का प्रबन्ध करा दिया। यहाँ के मन्त्री शेख इलाहीबख्श नाम के एक मुसलमान थे, इस कारण रियासत में मुसलमानों का काफी ज़ोर था। यहाँ पर काज़ी जी से खूब बहस रही जिसका परिणाम अच्छा ही रहा। रायपुर से आसन उठाकर स्वामी जी ब्यावर और बड़ौदा होते हुए 26 अक्तूबर (1881) को आर्यजाति के केन्द्र राजपूताने के शिरोमणि, चित्तौड़गढ़ में विराजमान हुए।

ऋषि की अश्रुधाराः – चित्तौड़गढ़ में उस समय बड़ी धूमधाम थी। लार्ड रिपन ने चित्तौड़गढ़ में एक बड़ा दरबार बुलाया था। राजा–महाराजा इकट्ठे हुए थे और सत्संग का बड़ा सुन्दर अवसर था। स्वामी जी का आतिथ्य उदयपुर रियासत की ओर से था। रियासत के राजकवि श्यामलदास जी स्वामी जी के भक्त थे। **{कविराजा श्यामलदास कवि तो नहीं थे। आप एक जाने माने इतिहासकार थे इसलिए भारत सरकार की ओर से 'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्राप्त करने वाले सर्वप्रथम आर्यसमाजी विद्वान् आप ही थे। 'जिज्ञासु'}** उन्होंने ठहरने का तथा विश्राम का पूरा प्रबन्ध कर रखा था। राजपूतों के इस संघ में स्वामी जी को प्रताप और दुर्गादास की सन्तान को देखने का अवसर मिला। कहाँ वह स्वाधीन शेर, कहाँ यह राज्य और इन्द्रियों के बंधुए। **ऋषि ने राजपूताने की दशा को रोते हुए हृदय से देखा। जो लोग वीरता के आदर्श, मान के पुजारी और स्वाधीनता के पुतले थे, वे ऋषि दयानन्द को विलास के दास, अफीम के पुजारी और अंग्रेज़ी सरकार के बंधुए दिखाई दिए।** ऋषि के शिष्य स्वामी आत्मानन्द जी ने एक घटना बताई है। अपने शिष्यों के साथ ऋषि एक दिन चित्तौड़गढ़ का किला देखने गए। जिस ऋषि दयानन्द की आँखों में पिता, माता और बहिनों का वियोग तरी न ला सका, चित्तौड़गढ़ की दशा देखकर उसकी आँखों से झर–झर आँसू बहने लगे। ऋषि दयानन्द ने एक ठंडी साँस लेकर निम्नलिखित आशय के वाक्य कहे–

"ब्रह्मचर्य का नाश होने से भारतवर्ष का नाश हुआ है और ब्रह्मचर्य का उद्धार करने से ही फिर देश का उद्धार हो सकेगा। आत्मानन्द! हम चित्तौड़गढ़ में गुरुकुल बनाना चाहते हैं।"

स्वामी जी के व्याख्यानों में कई आदमी नियमपूर्वक आया करते थे। शाहपुरा रियासत के नाहरसिंह जी स्वामी जी के भक्तों में से थे। वे सत्संग में प्रायः रोज़ आते थे। महाराणा सज्जनसिंह अब तक स्वामी जी के दर्शनों को नहीं आए थे। एक दिन उपदेश में एक भक्तमूर्ति राजपूत पधारे। सब राजपूतों ने उन्हें बड़ा आदर दिया। व्याख्यान के अन्त में ऋषि ने शाहपुराधीश से कहा– "आपका (अभ्यागत महोदय का) पहले तो कभी साक्षात्कार नहीं हुआ दीखता। आपकी शोभा वर्णन कीजिए।" शाहपुराधीश ने उत्तर दिया–"आप महाराणा श्री सज्जनसिंह हैं।" इस प्रकार इन दो महान् व्यक्तियों का परिचय हुआ। महाराणा सज्जनसिंह यों तो अन्य राजपूत राजाओं की भाँति ही पराधीन थे, परन्तु पराधीनता में भी उनके अन्दर एक विशेष महानुभावता पाई जाती थी। उनका हृदय विशाल था, विचार उदार थे, चरित्र में स्वाधीनता की बू थी। उस समय से ऋषि की मृत्यु पर्यन्त दोनों महानुभावों का गुरु–शिष्य भाव अटूट रहा।

चित्तौड़गढ़ की एक और घटना भी स्मरणीय है। ऋषि दयानन्द अपने कुछ भक्तों के साथ घूमने जा रहे थे। रास्ते में एक वटवृक्ष के नीचे दो–तीन मूर्तियाँ थीं। जब पास से गुज़रे तो ऋषि दयानन्द ने अपना सिर झुका दिया। इस पर एक शिष्य ने कहा–"महाराज, चाहे देवमूर्ति का कितना ही खण्डन कीजिए, पर उसका ऐसा प्रभाव है कि पास जाकर सिर झुक ही जाता है।" इस पर ऋषि खड़े हो गए। पास ही छोटे–छोटे बालक खेल रहे थे। उनमें एक चार वर्ष की नंगी बालिका भी थी। ऋषि ने उत्तर दिया– "देखते नहीं हो, यह मातृशक्ति है, जिसने हम सबको जन्म दिया है।" सब शिष्यों पर इस वाक्य का अपूर्व प्रभाव हुआ। **ऋषि के मन में स्त्री जाति के प्रति वैसा घृणा पूर्ण भाव नहीं था, जैसा प्रायः संन्यासी या विरक्त दिखाया करते हैं।** जो मनुष्य एक चार वर्ष की बालिका में माता की भावना कर सकता है, वह स्त्री जाति के प्रति कैसी प्रतिष्ठा का भाव रखता होगा और उसका हृदय कितना पवित्र होगा, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

1882 के प्रारम्भ में स्वामी जी को बम्बई आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर जाना था। जब विदा होने का समय आया तो महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामी जी से प्रार्थना की– "भगवन्! उदयपुर में यथासंभव शीघ्र ही दर्शन दीजिएगा।" ऋषि ने वायदा कर लिया।

बम्बई का वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ। यहाँ की दो घटनाएँ वर्णन योग्य हैं। प्रथम यह है कि यहाँ स्वामी जी ने थ्यासोफिकल सोसाइटी के आर्यसमाज से पृथक् होने की अन्तिम सूचना दी। दूसरी यह कि बम्बई आर्यसमाज ने अपने पहले से निश्चित किए विस्तृत नियमों को छोड़कर लाहौर आर्यसमाज के स्वीकृत नियमों को स्वीकार कर लिया।

इन्हीं दिनों पादरी यूसुफ **{यह एक गोरा पादरी था। इसका नाम जोसेफ कुक था। जोसेफ को ही पूर्वी देशों में यूसुफ बोला जाता है। 'जिज्ञासु'}** ने एक व्याख्यान दिया, जिसमें यह सिद्ध करने का यत्न किया कि ईसाई धर्म ही ईश्वरीय है, शेष सब धर्म अनीश्वरीय है। स्वामी जी ने इस व्याख्यान के उत्तर में पादरी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। पादरी महाशय शास्त्रार्थ के लिए तैयार न हुए। स्वामी जी ने सार्वजनिक व्याख्यान देकर पादरी महाशय के दावे का भली प्रकार खण्डन किया। बम्बई से चलकर खण्डवा, इन्दौर और रतलाम में प्रचार करते हुए ऋषि दयानन्द 11 अगस्त 1882 को फिर उदयपुर पहुँच गए। ठहरने का प्रबन्ध महाराणा जी की ओर से था। महाराणा सज्जनसिंह के सज्जन निवास बाग में ऋषि का आसन जमाया गया।

ऋषि दयानन्द प्रायः कहा करते थे कि प्रजा का सुधार राजा के सुधार पर अवलम्बित है। जहाँ कहीं भी ऋषि को अवसर मिलता, वह शासकों के सुधार में यत्नवान् रहते थे। उदयपुर में पहुँचकर आपने महाराणा के जीवन में परिवर्तन लाने का उद्योग किया। ऋषि को राजपूतों पर बड़ा विश्वास था और उनमें से भी प्रताप के वंशजों पर तो विशेष आस्था थी। थोड़े ही समय में आपने महाराणा सज्जनसिंह के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन पैदा कर दिया। आजकल के भारतीय रईसों में जितने दोष होते हैं, महाराणा में, स्वामी जी के आने से पूर्व सभी थे। विलासिता, शराब, वेश्यागमन आदि कुवृत्तियों और मूर्तिपूजा, बलिदान आदि के भ्रमात्मक विश्वासों ने उदयपुर नरेश सज्जनसिंह जी महाराणा को घेरा हुआ था। स्वामी जी के उपदेश से बहुत शीघ्र ही सुधार होने लगा। महाराणा ने हर रोज़ स्वामी जी से पढ़ना आरम्भ किया। उन्हें संस्कृत का कुछ अभ्यास पहले से था। शास्त्रों के पढ़ने में उन्हें कोई विशेष कठिनाई न हुईं स्वामी जी ने उन्हें विशेष आग्रह से मनुस्मृति का राज–प्रकरण पढ़ाया। वहाँ राजा के धर्मों का अनुशीलन करके महाराणा की आँखें खुल गईं। उन्होंने जीवन का सुधार आरम्भ कर दिया। महाराणा ने अपना समय विभाग निश्चित कर लिया। प्रातः काल उठने लगे, सन्ध्योपासन नियमपूर्वक होने लगा, शराब और वेश्यागमन का परित्याग कर दिया। राज्यकार्य से शेष समय में महाराणा सत्संग और ऋषि से शास्त्रों का अध्ययन करते। धीरे–धीरे महाराणा ने वैशेषिक और पातंजल योगदर्शन पढ़ लिए और प्राणायाम की विधि भी ऋषि से सीख ली।

यहाँ उन दिनों पण्डित विष्णुलाल मोहनलाल जी पाण्ड्या राज्य के कार्यकर्त्ताओं में थे। पण्डित जी ऋषि के परमभक्त थे। **{यह व्यक्ति अपने लाभ और लोभ के लिए ऋषि–भक्ति का दिखावा करता रहा। श्री स्वामीजी के बलिदान के शीघ्र पश्चात् अपने घर मथुरा जाकर पोप लीला करने लगा। ऋषि के पत्र और कुछ पाण्डुलिपियाँ भी चुराकर ले गया।' ऋषि का अपूर्व पत्र–व्यवहार' में स्वामी श्रद्धानन्दजी लिखित भूमिका पढ़िए।–'जिज्ञासु'}** वह प्रायः स्वामी जी

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

श्री पं. भगवद्दत्त जी

(जन्म 27 अक्टूबर 1893 ई.। माता-श्रीमती हरदेवी जी, पिता-लाला चन्दनलाल जी)

● डॉ. ज्वलन्त कुमार

पं. भगवद्दत्त जी जन्मतः आर्यसमाजी थे क्योंकि इनके पिताजी तथा माताजी दोनों ने स्वामी दयानन्द जी के दर्शन ही नहीं किए अपितु उनके प्रवचनों को सुनकर 1878 ई. में अमृतसर आर्यसमाज के सभासद् बन गए थे। 1925 ई0 में मथुरा में जब ऋषि दयानन्द की जन्मशताब्दी मनाई गई थी, तब ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्ष द्रष्टा और उनके प्रवचनों के श्रोता 34 (चौंतीस) स्त्री–पुरुष 18 फरवरी 1925 ई. को मंच पर उपस्थित किए गए। उनमें श्री भगवद्दत्त जी की माताजी भी थीं।

{श्रीमद् दयानन्द जन्म शताब्दी वृत्तान्त (नवम परिच्छेद–'स्वामी जी के समकालीन पुरुषों के दर्शन और भाषण), पृष्ठ–2151 13वीं संख्या पर श्रीमती हीरा देवी जी (माता पं. भगवद्दत्त जी पंजाब)' उल्लिखित है। पं. भगवद्दत्त जी ने अपनी माता का नाम 'हरदेवी' लिखा है।}

पं. भगवद्दत्त जी ने ***'वैदिक वाङ्मय का इतिहास'*** के प्राक्कथन में अपना परिचय लिखा है मेरा जन्म सन् 1893 ई. के अक्टूबर मास की 27 तारीख को पंजाबान्तर्गत अमृतसर नामक नगर में हुआ था। मेरे पिता का नाम लाला चन्दनलाल और माता का नाम श्रीमती हरदेवी है। मेरी माता इस समय जीवित हैं। सन् 1913 ई. में बी.ए. श्रेणी में पग रखते ही मैंने संस्कृत भाषा का अध्ययन आरम्भ किया। उससे पूर्व में विज्ञान पढ़ता रहा था। सन् 1915 में बी.ए. पास करके मैंने वेदाध्ययन को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। इसका कारण श्री लक्ष्मणानन्द जी का उपदेश था। योगिराज लक्ष्मणानन्द जी के सत्संग का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा है। सन् 1912 के दिसम्बर के अन्त में उनका देहावसान हुआ था परन्तु उनकी सारगर्भित बातें मेरे कानों में आज तक गूँज रही हैं। उनकी श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी में अगाध भक्ति थी। वे तो योगाभ्यास में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के शिष्य थे।

दयानन्द कॉलेज लाहौर से बी.ए. पास करके मैंने लगभग छः (6) वर्ष तक इसी कॉलेज में अवैतनिक काम किया। तत्पश्चात् श्री महात्मा हंसराज जी की कृपा से मई 1921 में मैं इस कॉलेज का आजीवन सदस्य बना। मास मई सन् 1934 तक मैं इस कॉलेज के अनुसंधान विभाग का अध्यक्ष रहा। इन 19 वर्षों के समय में मैंने इस विभाग के पुस्तकालय के लिए लगभग 7000 हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्र किए। इन ग्रन्थों में सैकड़ों ऐसे हैं, जो अन्यत्र अनुपलब्ध हैं मुद्रित पुस्तकों की भी एक चुनी हुई राशि मैंने इस पुस्तकालय में एकत्र कर दी थी। इसी पुस्तकालय के आश्रय से मैंने इन 19 वर्षों में विशाल वैदिक और संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन किया। यह अध्ययन ही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य बना रहा है। इसके लिए जो–जो कष्ट और विघ्न बाधाएँ मैंने सही हैं, उन्हें मैं ही जानता हूँ।"

{वैदिक वाङ्मय का इतिहास (प्रथम भाग), लेखक–पं. भगवद्दत्त, प्राक्कथन (पृष्ठ–क) हिन्दी भवन प्रेस, अनारकली–लाहौर, प्रथम संस्करण, मार्च 1935 ई.।}

पं. भगवद्दत्त का प्राचीन वाङ्मय से सम्बद्ध लेखन

जिन ग्रन्थों के कारण पण्डितजी को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली, वे हैं–तीन भागों में प्रकाशित ***'वैदिक वाङ्मय का इतिहास'*** तथा ***'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास'*** (दो भाग)। (1) ***'वैदिक वाङ्मय का इतिहास'*** का प्रथम भाग 1991 वि.सं. (मार्च 1935 ई)। (2) ***'वैदिक वाङ्मय का इतिहास'*** का द्वितीय भाग–1994 वि.सं.। (3) ***'वैदिक वाङ्मय का इतिहास'*** का तृतीय भाग 1998 वि.सं.। ये तीनों भाग लाहौर से प्रकाशित हुए। पं. भगवद्दत्त के दिवंगत होने बाद उनके विद्वान् पुत्र पं. सत्यश्रवाः ने इन तीनों भागों को क्रमशः सन् 1978, 1974 तथा 1976 ई. में प्रकाशित किया। प्रथम भाग वेदों की विविध शाखाओं का अनुसंधानपूर्ण इतिहास प्रस्तुत करता है। द्वितीय भाग में ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों का विशद विवरण और मूल्यांकन है। तृतीय भाग में वेदभाष्यकारों का परिचय तथा समीक्षाएँ हैं। वैदिक वाङ्मय के इतिहास से सम्बन्धित अनेक मूल्यवान् तथ्यों पर इस इतिहास में पहली बार प्रकाश डाला गया है। इनका महत्त्व इसी एक बात से सिद्ध हो जाता है कि इसके प्रकाशन के बाद पचासों लेखकों ने इस विषय पर लिखे अपने ग्रन्थों में इसकी बहुत सी सामग्री ज्यों की त्यों उद्धृत कर ली है। पं. सत्यश्रवाः जी ने स्वसम्पादित संस्करण में 'इतिहास' के प्रत्येक भाग में 75 से लेकर 125 पृष्ठों तक की नई सामग्री जोड़ी है, जिसे मूल लेखक ने अपने जीवन के संध्याकाल तक संशोधित तथा परिवर्धित सामग्री के रूप में संगृहीत कर रखा था। सम्पादक का अपना शोध–अध्ययन भी संयोजित है और 'विद्वान् पिता के विद्वान् पुत्र' की लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाला है।

पण्डित जी की दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'भारत वर्ष का बृहद् इतिहास' (दो भाग) है। (4) भारतवर्ष का बृहद इतिहास (प्रथम भाग) का प्रथम संस्करण वि.सं. 2008 में तथा द्वितीय संस्करण वि.सं. 2018 में छपा। तृतीय संस्करण जुलाई 1994 ई. में छपा है, जिसका सम्पादन पं. सत्यश्रवाः (पण्डित जी के सुपुत्र) ने किया है। (5) भारतवर्ष का बृहद इतिहास (द्वितीय भाग) का प्रथम संस्करण वि.सं. 2017 में छपा था। द्वितीय संस्करण 2000 ई. में पं. सत्यश्रवाः जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। भारतीय इतिहास लेखक जिस काल को प्रागैतिहासिक (Pre Historic) कहकर उपेक्षित करते हैं अथवा Mythological कहकर इतिहास की संज्ञा देने में भी संकोच करते हैं, उसे व्यवस्थित करने का श्रेय पं. भगवद्दत्त जी को जाता है। प्रो. पार्जिटर के बाद भगवद्दत्त ही प्रथम भारतीय विद्वान् हैं, जिन्होंने पुराणों में प्राप्त राजाओं की वंशावलियों का परीक्षण, अध्ययन तथा विश्लेषण किया। भगवद्दत्त जी ने उन पाश्चात्त्य लेखकों एवं उनका अनुसरण करने वाले भारतीय विद्वानों से लोहा लिया, जो जानबूझकर भारतीय मूल्यों की उपेक्षा एवं अवमानना करते थे। (6) भारतवर्ष का इतिहास (गुप्त साम्राज्य के अन्त तक) शीर्षक से एक संक्षिप्त इतिहास भी पं. भगवद्दत्त जी ने लिखा, जिसमें इतिहास का क्रम मात्र जोड़ा गया है। सुप्रसिद्ध घटनाओं का अति संक्षिप्त विवरण देते हुए तिथि–क्रम को ठीक करने में ही सर्वाधिक प्रयत्न किया गया, जिसका प्रथम संस्करण वि. सं. 1997 (1940 ई0) में प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण भी पण्डित जी के जीवन–काल में ही पर्याप्त नई सामग्रियों के साथ वि.सं. 2003 (दिसम्बर 1946 ई.) में छपा। इसका तृतीय परिवर्द्धित संस्करण वि.सं. 2058 (2001 ई.) में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण के परिवर्धक तथा सम्पादक पं. सत्यश्रवाः जी हैं। (7) निरुक्त भाषा–भाष्य, प्रथम संस्करण (1964 ई.), द्वितीय संस्करण (2004 ई.)। (8) वेदविद्या निदर्शन, प्रथम संस्करण (1959 ई.), द्वितीय संस्करण (2005 ई.)। (9) भाषा का इतिहास, प्रथम संस्करण (1956 ई.), द्वितीय संस्करण (1957 ई.)। तृतीय परिवर्धित तथा परिष्कृत संस्करण 1964 ई. में छपा। इसी का नवीन संस्करण 'विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द नई दिल्ली' ने 2012 ई. में प्रकाशित किया है। (10) भारतीय संस्कृति का इतिहास, प्रथम संस्करण (1965 ई.), इसका नवीन संस्करण 'विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द' ने 2010 ई. में प्रकाशित किया है। (11) प्राचीन भारतीय राजनीति (12) ऋग्वेद पर व्याख्यान (13) ऋङ्मन्त्र– व्याख्या (14) उद्गीथाचार्य कृत ऋग्वेद भाष्य (दशम मण्डल का कुछ भाग) (15) वैदिक कोषः (हंसराज –भगवद्दत्त), इस कोष के संकलनकर्ता डी.ए.वी. पुस्तकालय अनुसंधान विभाग के पुस्तकाध्यक्ष पं. हंसराज जी की सहायता से पं. भगवद्दत्त ने इस वैदिक कोष को तैयार किया था। प्रारम्भ में पण्डित जी लिखित महत्त्वपूर्ण भूमिका कोष–सम्बन्धी शोध निबन्ध ही है। इसका पुनः मुद्रण 'राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नव 'देहली' ने 2002 ई. में किया है। पण्डित जी द्वारा वैदिक वाङ्मय के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सम्पादित हैं। जैसे–(16) अथर्ववेदीय–पंचपटलिका, (17) अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा, (18) चारायणीय शाखा, (19) मन्त्रार्षाध्याय, (20) आथर्वण ज्योतिष। (21) धनुर्वेद का इतिहास तथा आचार्य बृहस्पति के राजनीति सूत्रों की भूमिका– (22) 'बार्हस्पत्य सूत्र की भूमिका' भी उनकी उल्लेखनीय कृति है। (23) वाल्मीकीय रामायण के बाल, अयोध्या तथा अरण्य काण्ड के पश्चिमोत्तर पाठ (काश्मीरी) संस्करण का सम्पादन भी उनका एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। (24) 'Western Indologists : A Study in Motives' (प्रकाशन– 1954 ई0) में लेखक ने विल्सन, मैक्सूलर, वेबर, मोनियर विलियम्स, गार्वे तथा विण्टरनिट्ज आदि पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञों के वेद तथा प्राच्य अध्ययन विषयक ईसाई पूर्वाग्रहों को उजागर किया है। (25) 'Extra ordinary Seientific Knowledge in vedic works' का प्रणयन पण्डित जी ने 1963 ई. में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन (दिल्ली) के अवसर पर किया था। आपकी अन्तिम कृति 'Story of Creation-as seen by Seers' शीर्षक थी, जो आपके निधन के दो मास पूर्व ही प्रकाशित हुई। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपने संस्मरणों में ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रेरणा के लिए पं. भगवद्दत्त के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है।

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

नः और वः की तकरार

● डॉ. सुरेन्द्रकुमार शर्मा

वैदिक चिन्तन के राजमार्ग से आगे बढ़ते हुए आचमन मंत्र का एक अक्षर 'नः' आगे बढ़ रहा था परन्तु दूसरी ओर से संगठन मंत्र का एक अक्षर 'वः' भी उसी रास्ते से आगे बढ़ रहा था। दोनों आमने–सामने आ गए। रास्ता संकरा था। कोई पीछे हटने को तैयार न था। उनका अहंकार सातवें आसमान पर था और उनका यही अहंकार मनुष्य वाणी में प्रकट हो गया।

"आप परे हट जाइए, मुझे आने दीजिए।" 'नः' ने उद्विग्न होकर कहा।

"मैं क्यों हटूँ? आप हटिए, रास्ता छोड़िए।" 'वः' ने भी उसी स्वर में उत्तर दिया।

दोनों बीच रास्ते में डटे रहे। जाम लग गया, ट्रेफिक रुक गया। 'नः' की तरफ से प्रातः कालीन मंत्र था गायत्री मंत्र सामने आ गए और बोले–

"भाई साहब, क्यों तमाशा कर रहे हैं, जाम लग गया है, एक तरफ हो जाइए।"

"मैं क्यों हटूँ, देख रहे हैं, मेरे पीछे कितनी लम्बी लाइन है, कितना बड़ा जाम लगा है। अघमर्षण मंत्र, मनसा परिक्रमा, उपस्थान मंत्र और समर्पण मंत्र सब मेरे पीछे खड़े हैं।" 'वः' भी अकड़कर बोला।

इसके बाद दोनों तरफ के मंत्र एकत्रित हो गए और 'नः' तथा 'वः' को समझाने लगे।

"अच्छा आप लोग चाहते क्या हैं?" मंत्रों की भीड़ ने उन दोनों से पूछा।

जो निर्बल या प्रभाव हीन होगा, उसको पीछे हटना पड़ेगा।"

'नः' ने अपना मत व्यक्त किया।

"वः' क्या तुम इस चेलेंज को स्वीकार करते हो? मंत्रात्मक भीड़ ने 'वः' से पूछा।

"हाँ, मुझे मंजूर हैं।" 'वः ने भी उत्तर दिया।

तो जो परीक्षा में हार जाएगा, उसे पीछे हटना पड़ेगा। तुम नहीं हटोगे तो हम हटा देंगे क्योंकि तुम छोटे अक्षर हो और हम हैं बड़े वाक्य, तुम बच्चे हो और हम बुजुर्ग। तो तुम तैयार हो?"

"हाँ," दोनों अहंकार की मुद्रा में बोले।

"तो तुम पहले एक काम करो, तुम्हारे आगे जो विसर्ग (:) लगे हुए हैं उन्हें कुछ समय के लिए अपने से अलग करके हमें दे दो।" बुजुर्ग मनसा परिक्रमा ने आदेश दिया।

दोनों ने विसर्ग हटाए तो वे हो गए 'न' और 'व।" तब मनसा परिक्रमा मंत्र ने कहा, यह है तुम्हारा असली चेहरा। 'न' का अर्थ होता है नहीं' और 'व' का अर्थ होता है अथवा या और। इन्हीं सामान्य अर्थों पर तुम फूले नहीं समा रहे थे। रास्ता रोके हुए थे। मंत्रों की गति को अवरुद्ध किए हुए थे। इन मंत्रों ने न जाने कितने साधकों का कल्याण करना था, हृदयतंत्री को झंकृत करना था, लेकिन तुम्हारे अहंकार के कारण सब धरा का धरा रह गया।" इतना कह कर मनसा परिक्रमा मंत्र ने मुँह फेर लिया।

"हमें क्षमा कर दीजिए, हम से बहुत बड़ी गलती हो गई है। हमें हमारे विसर्ग लौटा दीजिए। विसर्गों के बिना हम अपूर्ण हैं।" 'नः' और 'वः' दोनों क्षमायाचना करते हुए एक स्वर में बोले ।

"ठीक है, तुम्हें तुम्हारे विसर्ग लौटाए जाते हैं। ये विसर्ग ही तो तुम्हारे सौन्दर्य और महान अर्थ के द्योतक थे पर तुम अहंकार कर बैठे और अपना अर्थ सम्बन्धी सौन्दर्य गवा बैठे।" इस बार अघमर्षण मंत्र ने उन्हें समझाया।

"बच्चो, तुम्हें मैंने और अघमर्षण मंत्र दोनों ने क्षमा कर दिया है। अघमर्षण मंत्र का अर्थ होता है–पापों को नष्ट करने वाला मंत्र।" मनसा परिक्रमा मंत्र ने अपनी बात कही।

"कृपया बताएँ कि विसर्गों (:) के लगने से हमारे स्वरूप में क्या परिवर्तन होता है, कैसे सौन्दर्य आता है?" 'नः' और 'वः' एक स्वर में बोले।

"विसर्गों के लगने से तुम्हारा अर्थ बदल जाता है। 'न' का अर्थ होता है– नहीं, लेकिन जब विसर्ग लग गए और हो गया–'नः' तो इसका अर्थ होगा– हमारा।" इस बार उपस्थान मंत्र ने समझाया।

"कोई उदाहरण दीजिए।" 'नः' ने उत्साहित होकर पूछा।

"अपने गायत्री मंत्र से पूछो।" उपस्थान मंत्र ने गायत्री मंत्र की ओर संकेत करते हुए कहा।

"उदाहरण मैं देता हूँ।' आचमन मंत्र के अन्त में तो तुम आते ही हो– **'शंयोरभिस्रवन्तु नः'** पर मेरे (गायत्री मंत्र) अन्त में भी तुम्हे सम्मानित स्थान दिया गया है–**'धियो यो नः प्रचोदयात्'** कुछ समझे। तुम्हारा अर्थ भी बदल गया और सम्मान भी बढ़ गया।" इस बार समर्पण मंत्र ने अपनी बात कही।

"आप 'नः' का ही गुणगान किए जा रहे हैं पर मेरी विशेषता के बारे में एक शब्द भी नहीं कह रहे हैं। इस बार 'वः' नाराज़ होकर बोला।

"ऐसी बात नहीं है। जिसका स्थान पहले होगा, उसका वर्णन पहले किया जाएगा।" अघमर्षण मंत्र ने धीरे से कहा।

"'नः' का स्थान पहले है और 'वः' का स्थान बाद में, यह आप कैसे कह सकते हैं?" 'वः' ने रूष्ट होकर पूछा।

"तुम स्वयं देख लो ! संध्या–हवन प्रक्रिया में पहले प्रातःकालीन मंत्र, तपश्चात् गायत्री मंत्र, आचमन मंत्र, अंगस्पर्श मंत्र, अघमर्षण मंत्र, मनसा परिक्रमा मंत्र, उपस्थान मंत्र और अन्त में समर्पण मंत्र।"

इस बार अंगस्पर्श मंत्र ने अपनी विद्वत्ता झाड़ी।

"पर इन मंत्रों में कहीं भी मेरी चर्चा नहीं। मेरा इतना बड़ा अपमान! मुझे आपका निर्णय स्वीकार नहीं।"

"नाराज़ न हो, बेटे। हर मंत्र और हर अक्षर का अपना स्थान है। तुम्हारा संकेत सबसे अंतिम मंत्र' संगठन सूक्त' में है। वहाँ पर तुम्हारा ('वः') प्रयोग हुआ है"–**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।**

"जैसे आप लोगों ने 'नः' का अर्थ किया है–हमारा, वैसे ही क्या मेरा अर्थ भी बताएँगे?"

"हाँ, जैसे 'नः' का अर्थ है– हमारा, वैसे ही 'वः' का अर्थ है–"तुम्हारा।"

"हमारा और तुम्हारा, इससे आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं?"

"हमारा या हमारी शब्दों में प्रार्थना का भाव है और तुम्हारा या तुम्हारी शब्दों में आदेश का भाव है।"

"बात मेरी समझ नहीं आ रही है, आप कहना क्या चाहते हैं?" 'वः' ने 'अनभिज्ञता प्रकट करते हुए कहा।

"आप प्रार्थना करते हुए कहते हैं **शंयोर भिस्रवन्तु नः** अर्थात् हे ईश्वर, हमारे जीवन में सुख की वर्षा कीजिए। फिर हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर प्रभु आदेश देते हैं–**'समाना हृदयानि वः'** अर्थात् तुम्हारे हृदय में समान कल्याणकारी विचार हों।" इस बार प्रातः कालीन मंत्र ने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया।

"तो इसका मतलब मैं 'नः' आत्मा का प्रतीक हूँ तो 'वः' परमात्मा का प्रतिनिधि है।" 'नः' ने प्रसन्न होकर कहा।

"मैं भी खुश हूँ कि मैं ही भक्तों को ईश्वर का संदेश देता हूँ। 'वः' भी प्रसन्न मुद्रा में बोला।

"अच्छा, बच्चो ! अब मूल प्रश्न पर आओ। तुम दोनों अड़े हुए थे कि पहले रास्ते से कौन हटेगा, कौन किसको रास्ता देगा? अब बोलो पहले कौन किसको रास्ता देगा?" वयोवृद्ध मनसा परिक्रमा मंत्र ने पूछा।

"पहले मैं हटूँगा। क्योंकि 'नः' का अर्थ होता है– हमारा और 'वः' का अर्थ है तुम्हारा पहले 'नः' ईश्वर का वन्दन करता और बाद में, 'वह' ईश्वर के रूप में आदेश देता है। अतः मैं प्रसन्न होकर ईश्वर के रूप में आदेश देता हूँ कि पहले 'नः' के रूप में आत्मा पहले आगे बढ़े और बाद में मैं अर्थात् 'वः' आगे बढ़ूँगा। 'नः' और 'वः' आत्मा और परमात्मा के रूप में दोनों शाश्वत सत्य हैं फिर किस बात की टकराहट।" 'वः' ने बुद्धिमता का परिचय देते हुए कहा।

इसके बाद सारे मंत्र साधक के अन्तस्थल में नाचने–गाने लगे। मंत्रों की उस भीड़ में 'नः' और 'वः' न जाने कहाँ गुम हो गए।

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)

☞ पृष्ठ 05 का शेष

स्वामी दयानन्द के ...

वैशिष्ट्य को प्रकट करती है।

सत्य नहीं, अपनी इच्छा सर्वोपरि–

यह सर्वसम्मत और निश्चित ही समझना चाहिए कि यह विचार चाहे कितना ही आकर्षक और आवश्यक हो किन्तु ऐसा नहीं कि जिस पर अद्वैतवाद सिद्धान्त की स्थिर नींव रखने की आशा की जा सके और यह भी कुछ कम निश्चित नहीं कि अनेक दार्शनिकों की इच्छा से अधिक इस वाद ने ऐसी सुविधा प्रस्तुत की है। **ऐसी दार्शनिकता का मूल स्रोत यह विचार है कि संसार अवश्यमेव किसी सीमा तक हमारी इच्छाओं के अनुसार होना चाहिए।** आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करते समय **अनजाने में अपनी इच्छाओं को सामने रखा है** और ऐसे दर्शन रचे जिनमें उनकी झलक है। **उन्होंने विचारार्थ प्रस्तुत हुए वाद में सत्य खोजने का यत्न नहीं किया वरन् यह जानने का यत्न किया है** कि जिस सिद्धान्त को यह वाद सत्य बतलाता है, वह अभीष्ट भी है और इस प्रकार उन्होंने अभीष्टता की भावना को, जो यथार्थता की जाँच में यथार्थ विषयक हमारी अपनी ही भावनाओं की झलक है बहुत, महत्त्व दे दिया है।

यह स्वीकार करके कि एकता की भावना आत्मा की एक शिक्षाप्रद और सार्वत्रिक कामना है। हम पूछना चाहते हैं कि क्या पूर्व कथित अर्थ में मौलिक एकता का सिद्धान्त सार्वत्रिक कामना है। ऐसी इच्छा है, इस में तो किसी को विवाद नहीं है किन्तु दर्शनशास्त्र का इतिहास बताता है कि यह सार्वत्रिक नहीं है अतएव यथार्थ पदार्थ एक नहीं दो हैं।" **{G. E. M. Joad's 'Matter, Life and Value' (p. 31 to 37 and 71)}** यहाँ 'दो' का अर्थ एक से अधिक अर्थात् अनेक हैं।

'गंगा ज्ञान सागर–2' से साभार

☞ पृष्ठ 06 का शेष

राजपूताने में प्रचार ...

से ज्ञानचर्चा किया करते थे। एक दिन निम्नलिखित आशय की बातचीत हुई–

पाण्ड्या जी ने पूछा– "भगवन्, भारत का पूर्ण हित कब होगा? यहाँ जातीय उन्नति कब होगी?"

स्वामी जी ने उत्तर दिया– "एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर है। सब उन्नतियों का केन्द्र स्थान ऐक्य है। जहाँ भाषा, भाव और भावना में एकता आ जाए, वहाँ सागर में नदियों की भाँति सारे सुख एक–एक करके प्रविष्ट करने लग जाते हैं। मैं चाहता हूँ कि देश के राजे, महाराजे अपने शासन में सुधार और संशोधन करें। अपने राज्यों में धर्म, भाषा और भावों में एकता उत्पन्न कर दें, फिर भारत भर में आप ही आप सुधार हो जाएगा।" (श्रीमद्यानन्द प्रकाश)।

ऋषि ने एक दिन कविराजा श्यामलदास जी से कहा– "मेरे मरने के पश्चात् मेरी अस्थियों को किसी खेत में डाल देना, कोई समाधि या कोई चिह्न कभी न बनाना।"

कविराजा ने कहा– "महाराज, मैंने सोच रखा था कि अपनी एक पत्थर की मूर्ति बनवाऊँ और उसे किसी जगह रख दूँ ताकि मेरे पीछे वह मेरा स्मारक समझा जाए।"

स्वामी जी ने तुरन्त उत्तर दिया– "देखो कविराजा जी, ऐसा भूलकर भी मत करना। बस यही तो मूर्तिपूजा की जड़ हुआ करती है।" **{ऋषि ने अपनी अस्थियाँ भी खेतों में बिखेरने की आज्ञा दी ताकि खाद के रूप में काम में आवें। पं. चमूपति जी का पद्य है :–**

है मरकर भी जीतों के काम आने वाला।
दयानन्द स्वामी तिरा बोल बाला।।

कविराजा की एक कविता इस बात का प्रमाण है कविराजा का यह प्रश्न ऋषि के स्मारक विषय में था न कि उसकी अपनी मूर्ति के सम्बन्ध में। पं० लेखराम जी का लेख भी यही बताता है। –'जिज्ञासु'}

ऋषि के ये शब्द स्मरणीय हैं। ऋषि मूर्तिपूजा को हानिकारक समझते थे। वे जानते थे कि लोग असली आशय को भुलाकर स्थूल रूप में उलझ जाते हैं। ऋषि जीवित–जागृत स्मारकों को मानते थे, जड़ या मुर्दा स्मारकों को नहीं। **वे अपना स्मारक आर्यसमाज को, वेदभाष्य को और परोपकारिणी को मानते थे, किसी शिला या मकान को नहीं। जड़ स्मारक स्वामी जी के आशय के प्रतिकूल था।**

एक दिन महाराणा सज्जनसिंह अकेले में ऋषि दयानन्द से बोले– "महाराज, यदि आप देशकालोचित समझ कर मूर्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दें तो अति उत्तम हो क्योंकि आप जानते हैं कि यह रियासत एकलिंगेश्वर महादेव के अधीन चली आती है। यदि आप स्वीकार करें तो इस मन्दिर के महन्त बन सकते हैं। वैसे तो यह राज्य भी उसी मन्दिर को समर्पित है, परन्तु मन्दिर के नाम जो राज्य का भाग लगा हुआ है, उसकी भी लाखों की आय है। उस पर आपका अधिकार हो जाएगा।

ऋषि को क्रोध नहीं आता था, परन्तु अपने शिष्य की इस बात से वे भी झुँझला उठे। ऋषि ने उत्तर दिया, "महाराणा जी! आप मुझे लालच देकर उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की अवज्ञा करने पर उद्यत कराना चाहते हैं। ये आपके मन्दिर और ये आपकी छोटी–सी रियासत (जिससे मैं एक दौड़ में बाहर जा सकता हूँ) मुझे धर्म से च्युत नहीं कर सकती। आप निश्चय रखें कि मैं परमात्मा और वेदों की आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता।"

यह उत्तर सुनकर महाराणा लज्जित हुए और क्षमा माँगने लगे।

"आर्यसमाज का इतिहास प्रथम–भाग" से साभार

☞ पृष्ठ 07 का शेष

श्री पं. भगवद्दत्त जी

{"ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रेरणा मुझे सबसे पहले पं. भगवद्दत्त से ही मिली।.... सम्पादन और अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली क्या है, इसे भी उनके सत्संग से मैंने सीखा। अनुसंधान के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण मेरा उसी समय बन गया था।"–जिनका मैं कृतज्ञ (राहुल सांकृत्यायन), पुस्तक का 25वाँ अनुक्रम– पं. भगवद्दत्त, पृष्ठ–123–125, किताब महल, इलाहाबाद, 1994 ई.।}

विशिष्ट लेख

1. वैजवाप गृह्यसूत्र संकलन।
2. शाकपूणि का निरुक्त और निघण्टु।
3. शूद्रक – अग्निमित्र – इन्द्राणीगुप्त।
4. साहसाङ्क विक्रम और चन्द्रगुप्त विक्रम की एकता।
5. Date of Visv'varupa.
6. आर्य वाङ्मय।
7. अश्वशास्त्र का इतिहास।
8. कल्पसूत्र
9. भारतीय प्राचीन राजनीति पर भाषण। सप्तम आर्य महासम्मेलन मेरठ में (2000 वि0 1951 ई.) के अन्तर्गत 'राजनीति सम्मेलन' के अध्यक्ष के रूप में पं. भगवत जी का भाषण, जिसे इस सम्मेलन के स्वागत मन्त्री लाला कालीचरण जी ने 2008 वि.स. में प्रकाशित किया। छोटे–बड़े लेखों और निबन्धों की गणना सुलभ नहीं है।
10. मनुष्य मात्र का परम मित्र स्वायंभुव मनु। (रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत–हरियाणा) ने इसे पुस्तिका का रूप देकर 1994 ई. में प्रकाशित किया है।

ऋषि दयानन्द की जीवनी, सत्यार्थ प्रकाश तथा पत्र विज्ञापन पर कार्य

ऋषि दयानन्द के प्रति आपकी दृढ़ भक्ति थी। फलतः स्वामी जी विषयक आपका शोध व अध्ययन कम महत्त्व का नहीं है। ऋषि दयानन्द के पत्रों तथा विज्ञापनों (सूचनाओं) का सम्यक् संकलन और व्यवस्थित कर प्रकाशन का कार्य आपने अपने हाथों में लिया। स्वामी श्रद्धानन्द, पं. चमूपति, महाशय मामराज का सहयोग लेकर स्वामी जी के पत्रों व विज्ञापनों का संग्रह प्रथमतः 1918, 1919 तथा 1927 ई. में आपने लाहौर से प्रकाशित किया। ऋषि के पत्रों की खोज जारी रही। 2012 वि.सं. (1956 ई.) में इसका द्वितीय परिवर्धित संस्करण अमृतसर से आपके निर्देशन में छपा। इस ग्रन्थ के सम्पादकीय में उल्लिखित आपके अमूल्य निर्देशों का स्थायी और ऐतिहासिक महत्त्व ऋषि–जीवनी के अध्येताओं के लिए सदा ही बना रहेगा।

स्वामी दयानन्द द्वारा स्वलिखित संक्षिप्त प्रारम्भिक जीवनी के तीन अंशों को कर्नल अल्कॉट ने दि थियोसोफिस्ट पत्र के तीन अंकों (अक्टूबर 1879, दिसम्बर 1879 तथा नवम्बर 1880 ई0) में प्रकाशित किया था। मैडम एच.पी. ब्लैवेट्स्की इस पत्र की सम्पादिका थीं। 4 अगस्त 1875 ई. को ऋषि ने पुणे (पूना) में अपने अन्तिम प्रवचन में स्वजीवन की प्रमुख– प्रमुख घटनाओं की चर्चा की थी। इनका आधार लेकर पं. लेखराम ने स्वलिखित ***'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र'*** में तत्सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन किया है। पं. भगवद्दत्त जी ने इन सभी सामग्रियों का संकलन कर सूक्ष्मेक्षिका से पूर्ण व्यवस्थित तथा सम्पादित करके एक आदर्श संस्करण प्रस्तुत किया है, जिसका अनेक बार प्रकाशन रामलाल कपूर ट्रस्ट ने किया है।

ऋषि दयानन्द के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन पण्डित जी के ऋषि विषयक कार्यों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वैदिक यन्त्रालय अजमेर, श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती तथा स्वामी वेदानन्द तीर्थ द्वारा सम्पादित व प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश के संस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन भी पं. भगवददत्त द्वारा सम्पादित सत्यार्थ प्रकाश की एक अन्य विशेषता है। इस ग्रन्थ की भूमिका में पण्डित जी ने किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन ग्रन्थ के सम्पादन में उपलब्ध हस्तलेखों तथा ग्रन्थ लेखक के जीवनकाल में प्रकाशित संस्करण के आधार पर किस रीति से उसका शुद्धतम सम्पादन किया जाए? इस पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचार लिखे हैं। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का मौलिक तथा प्रामाणिक संस्करण के सम्पादन तथा प्रकाशन में पं. भगवद्दत्त द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर ही सफलता पाई जा सकती है।

पं. भगवद्दत्त जी को वैदिक तथा संस्कृत वाङ्मय का व्यापक अध्ययन था, इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा पर प्रबल अधिकार भी। पं. गुरुदत्त विद्यार्थी के सम्पूर्ण साहित्य (जो परिनिष्ठित तथा साहित्यिक अंग्रेज़ी में लिखा गया है) का भाषानुवाद पं. भगवद्दत्त ने हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं. सन्तराम बी.ए. के सहयोग से गुरुदत्त ग्रन्थावली के रूप में राजपाल एण्ड सन्स, लाहौर से 1918 ई. में प्रकाशित कराया था।

पण्डित जी की सहधर्मिणी पंजाब प्रान्त की शास्त्री– परीक्षोत्तीर्ण प्रथम विदुषी महिला थीं। पुत्री, पुत्र और जामाता भी पण्डित जी के इच्छानुकूल चलने वाले विद्वान् उत्तराधिकारी थे। आजीविका के लिए आपकी पत्नी ने लाहौर में हिन्दी–संस्कृत के अध्ययन केन्द्र के रूप में महिला महाविद्यालय की स्थापना की थी। आपने अपने जामाता कविराज सूरमचन्द्र जी के साथ मिलकर आयुर्वेद का इतिहास भी प्रथम बार लिखा। प्रो. ए.बी. कीथ, प्रो. सिल्वाँ लेवी आपके अन्तरंग मित्रों में थे। पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, डॉ. कुन्हन् राजा तथा डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे प्रभृति विद्वानों से आपकी परम आत्मीयता थी। आपके सतत सान्निध्य के कारण पं. युधिष्ठिर मीमांसक आपके वास्तविक उत्तराधिकारी बन गए। पं. भगवद्दत्त जी का निधन 22 नवम्बर 1968 ई. को हो गया।

सहायक सामग्री

1. 'वेदवाणी' का "पं. भगवद्दत्त विशेषांक" (नवम्बर 1994 ई.), प्रकाशक–रामलाल कपूर ट्रस्ट (सोनीपत–हरियाणा)।
2. 'वेदवाणी' का "पाश्चात्य मत परीक्षणांक" (नवम्बर 1955 ई.), प्रकाशक–रामलाल कपूर ट्रस्ट (मोतीझील–वाराणसी)।
3. पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर (प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु), प्रकाशक–विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली, 2011 ई.।

अमेठी, (उ.प्र.) पिन–227405
मो. 7303474301

पत्र/कविता

महारानी ताराबाई

छत्रपति शिवाजी महाराज का महानिर्वाण तीन अप्रैल 1680 को हुआ और वर्ष 1681 में औरंगज़ेब ने उनके साम्राज्य पर धावा बोल दिया। उस समय यहाँ राज कर रहे छत्रपति शिवाजी के पुत्र छत्रपति संभाजी महाराज ने औरंगज़ेब से लगातार आठ वर्ष घनघोर संग्राम किया। औरंगज़ेब ने संभाजी महाराज को घात लगाकर अचानक कैद कर लिया और पुणे जिले में भीमा नदी के किनारे बड़ी निर्दयता से उनकी हत्या कर दी।

उसके बाद संभाजी के भाई एवं छत्रपति शिवाजी महाराज के दूसरे पुत्र छत्रपति राजाराम ने औरंगज़ेब के साथ वही संग्राम अगले 11 वर्ष तक जारी रखा। उन्हीं की अर्धांगिनी थीं ताराबाई भोंसले। वर्ष 1700 में छत्रपति राजाराम का निर्वाण हुआ। तब औरंगज़ेब बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि मराठाओं के तीन छत्रपति काल के गाल में समा चुके थे और अब उसके मुताबिक सह्याद्रि और दक्खन जीतना महज़ कुछ दिनों की ही बात थी, किंतु छत्रपति शिवाजी महाराज की वीरांगना पुत्रवधू महारानी ताराबाई ने औरंगज़ेब के सपने को चकनाचूर कर दिया।

महारानी ताराबाई महज 25 वर्ष की आयु में घोड़े पर सवार होकर रणभूमि में औरंगज़ेब की फौज से मुकाबला करती थीं। 1675 में सातारा जिले के तलबीड गाँव में जन्मी ताराबाई हिंदवी साम्राज्य के सरसेनापति हंबीरराव मोहिते की कन्या थीं। संभाजी महाराज के आदेशानुसार बाई के नजदीक हुई लड़ाई में हंबीरराव वीरगति को प्राप्त हुए थे। ऐसे वीर पिता की छत्रछाया में ही ताराबाई ने घुड़सवारी, तलवारबाजी एवं विविध युद्धकलाओं का प्रशिक्षण लिया था। जब औरंगज़ेब ने संभाजी महाराज की हत्या की, उसके बाद मराठा राजधानी रायगढ़ को जीतने के लिए मुगलिया फौज ने रायगढ़ किले की घेराबंदी कर दी।

ऐसे में पूरा राजपरिवार 'पातशाह' (बादशाह औरंगजेब) की कैद में न पड़ जाए इसलिए संभाजी महाराज की पत्नी येसुबाई ने अपने देवर राजाराम महाराज को गुप्त मार्ग से घेराबंदी के बाहर निकाल दिया। वहाँ से लगभग 600 मील दूर, आज के तमिलनाडु स्थित जिंजी में राजाराम महाराज ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। अष्टप्रधान मंडल की नियुक्ति की और जिंजी के अजेय दुर्ग के सहारे राजपाठ चलाया।

छत्रपति राजाराम महाराज एवं उनकी पत्नी महारानी ताराबाई के कार्यकाल में संताजी एवं धनाजी जैसे मराठा वीरों ने औरंगज़ेब की सेना को त्राहिमाम् कहने पर मजबूर कर दिया। राजाराम महाराज के निधन के बाद जब संभाजी महाराज की पत्नी येसुबाई और उनके पुत्र शाहू राजे औरंगज़ेब की कैद में थे, उस समय स्वराज्य एवं धर्म का परचम लहराए रखने के लिए ताराबाई ने वर्ष 1701 में अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय का राज्याभिषेक करवाया। अपने देश, धर्म और भूमि के लिए ताराबाई ने कई लड़ाइयाँ लड़ीं।

ताराबाई ने अपने कार्यकाल में मराठा सेना नर्मदा पार कर मालवा, मंदसौर और सिरौंजा क्षेत्र में भिजवाई। नर्मदा के किनारे रतनपुर में मराठा सेना ने मुगलों की सेना को परास्त कर दिया। उन्होंने कान्होजी आंग्रे को अपने नौदल (नौसेना) का प्रमुख बनाया। रामचंद्र पंत अमात्य, शंकरजी नारायण, परशुराम पंत प्रतिनिधि, धनाजी जाधव, उधाजी चह्मण, चंद्रसेन जाधव जैसे सरदार एवं सहयोगियों को जुटाकर औरंगज़ेब को नाकों चने चबवाकर दर–दर भटकने पर मजबूर कर दिया। यह वही समय था, जब अत्यधिक श्रम के कारण औरंगज़ेब बहुत कमज़ोर हो गया था और एक पैर से लंगड़ाने भी लगा था।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद वर्ष 1707 में शाहू राजे कैद से रिहा कर दिए गए। उसके बाद एक तरफ ताराबाई और दूसरी तरफ शाहू राजे, ऐसा गृहकलह शुरु हुआ कि मराठा राज्य दो खेमों में बँट गया। ऐन वक्त पर धनाजी जाधव, खंडी बल्लाल और बाद में पुणे जाकर पहले पेशवा बने बालाजी विश्वनाथ जैसे कर्त्तव्यनिष्ठ सरदारों ने ताराबाई का साथ छोड़ शाहू राजे का साथ देने का निर्णय किया। फिर भी वह शौर्यवती स्त्री डगमगाई नहीं।

कुछ समय बाद वारणा नदी को सरहद मान छत्रपति शिवाजी महाराज के वारिसों ने दो राजगद्दियाँ बनाई। कोल्हापुर के राज्य की व्यवस्था पन्हाला किले से ताराबाई स्वयं देखतीं और शाहू राजे ने सातारा में अपनी राजधानी स्थापित की। आगे चलकर वर्ष 1714 में ताराबाई की सौतन राजसबाई ने बगावत कर अपने बेटे को कोल्हापुर की राजगद्दी पर बिठा दिया और ताराबाई को नजरबंद कर दिया। उसके बाद काफी समय तक वह सातारा में रहीं।

इस दौरान राजनीति के कई उतार–चढ़ाव देखे। वह छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्य से लेकर पानीपत में मराठा सेनाओं के पतन तक के घटनाप्रधान काल की साक्षी रहीं। 86 वर्ष की आयु में वर्ष 1761 में उनका देहावसान हो गया।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

करो देश का ध्यान

हे देश के आर्यो ! करो देश का ध्यान।
जगत् गुरु ऋषि दयानन्द की, शिक्षाएँ लो मान।।
प्यारा आर्यवर्त हमारा, सर्व विश्व का स्वामी था।
धन, बल, विद्या, रण कौशल में भूमण्डल में नामी था।।
दुनियाँ भर के नर–नारी, भारत में पढ़ने आते थे।
हमें जन्म दो भारत में, ईश्वर से ध्यान लगाते थे।।
वेद पढ़ें, ऋषियों–मुनियों से, जिससे हो कल्याण।
हे देश के आर्यो ! करो देश का ध्यान।। 1।।

अश्वपति, हरिश्चन्द्र, शिवी से, त्यागी थे सम्राट यहाँ।
रामचन्द्र अरू भोज राज के, न्यारे ही थे ठाठ यहाँ।।
गौतम, कपिल, कणादि, जैमिनी, पतंजलि तपधारी थे।
भारद्वाज, अगस्तय, शृंगि, जैसे वैदिक प्रचारी थे।।
सकल विश्व में देव भूमि की, थी तब ऊँची शान।
हे देश के आर्यो ! करो देश का ध्यान।। 2।।

वर्णों के अनुसार बड़े–छोटे पहचाने जाते थे।
शुभ कर्मों के करने से सब ऊँची पदवी पाते थे।।
जो करते थे पाप कर्म वे, पापी–दुष्ट कहाते थे।
न्यायकारी थे भूप, दुष्ट जन, सजा मौत की पाते थे।।
आरक्षण का नाम नहीं था, समझों चतुर सुजान।
हे देश के आर्यो ! करो देश का ध्यान।। 3।।

आर्यवर्त्त में कहीं नहीं थी, जाति–पाति की बीमारी।
कर्म प्रधान मानते थे सब आर्यवर्त्त के नर–नारी।।
लक्ष्मण, हनुमत, अंगद जैसे, भारत में थे बलधारी।
वेद व्यास अरु विदुर भक्त से, थे तब वैदिक प्रचारी।।
कौशल्या, कुन्ती जैसी थी, माता यहाँ महान्।
हे देश के आर्यो ! करो देश का ध्यान।। 4।।

जातिवाद, जनगणना यदि, भारत में आप कराओगे।
वर्ग–वाद का, ऊँच–नीच का यदि तुम रोग बढाओगे।।
सच कहता हूँ दयानन्द का अपमान कराओगे।
दुनियाँ में आर्यो ! आप फिर कहीं न आदर पाओगे।।
पुण्य–पाप का, भले–बुरे का, करलो पूरा ज्ञान।
हे देश के आर्यो ! करो देश का ध्यान।। 5।।

भेद–भाव अरु द्वेष–ईर्ष्या, भारत में बढ़ जाएगी।
गृहयुद्ध होगा भारत में, जनता कष्ट उठाएगी।
ज़ोर फूट का हो जाएगा, बड़ी मुसीबत आएगी।
हा–हा कार मचेगा भारी, दुनियाँ हँसी उडाएगी।।
'नन्दलाल' जागो हे युवा ! करो राष्ट्र उत्थान।
हे देश के आर्यो ! करो देश का ध्यान।। 6।।

– पंडित नन्दलाल निर्भय
आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)
मो. 9813845774

डी.ए.वी. पालमपुर (हि.प्र.) में अमर शहीद कैप्टन सौरभ कालिया की 49वीं पुण्य जन्मतिथि पर दी श्रद्धांजलि

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, पालमपुर (हि.प्र.) के भूतपूर्व छात्र कारगिल वार हीरो अमर शहीद कैप्टन सौरभ कालिया की 49वीं पुण्य जन्मतिथि के उपलक्ष्य में, विद्यालय में अन्तर्विद्यालय विज्ञान प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसमें काँगड़ा व हमीरपुर क्षेत्र के विद्यालयों के 22 समूहों, जिसमें 11 डी.ए.वी. विद्यालयों तथा 11 अन्य विद्यालयों के लगभग 50 विद्यार्थियों ने भाग लिया। प्रदर्शनी का शुभारम्भ मुख्य अतिथि डॉ. सुदेश कुमार यादव–निदेशक, हिमालय जैव सम्पदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर के कर–कमलों द्वारा हुआ।

इस प्रदर्शनी में श्री सुखदेव भारद्वाज–चेयरमैन, अजन्ता कैमिकल इंडस्ट्रीज इंडिया, विशिष्ट अतिथि थे। डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, पालमपुर के प्रधानाचार्य श्री वी.के. यादव जी द्वारा इस अवसर पर उपस्थित अतिथियों का हार्दिक अभिनन्दन एवं स्वागत किया गया।

प्रदर्शनी में शहीद कै. सौरभ कालिया के पूजनीय माता–पिता श्रीमती एवम् श्री (डॉ.) एन. के. कालिया तथा भाई वैभव कालिया पूरे परिवार के साथ उपस्थित थे।

मुख्य अतिथि ने अपने उद्बोधन में अमर शहीद कै. सौरभ कालिया के जीवन से सम्बधित घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों को उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए सराहा।

सोहन लाल डी.ए.वी. अम्बाला में दो दिवसीय आयोजन

सोहन लाल डी.ए.वी. शिक्षा महाविद्यालय में लीगल लिट्रेसी क्लब के तहत दो दिवसीय कार्यक्रम का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों को कानूनी जागरूकता प्रदान करना और उनकी बौद्धिक एवं रचनात्मक क्षमताओं को विकसित करना था। कार्यक्रम का आयोजन महाविद्यालय के प्राचार्य के दिशानिर्देश व कार्यक्रम की संचालिका व लीगल लिट्रेसी क्लब की समन्वयक की अध्यक्षता में हुआ।

भाषण (डिक्लेमेशन), नारा लेखन, निबंध लेखन और वाद–विवाद, चित्रकला, कविता पाठ, पीपीटी प्रस्तुति, डॉक्यूमेंट्री फिल्म निर्माण और नाटक (स्किट) प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की गईं।

डॉ. निरुपमा कोहली ने इस आयोजन को सफल बनाने में सहयोग देने वाले सभी प्रतिभागियों, आयोजकों और शिक्षकों का आभार व्यक्त किया। यह कार्यक्रम छात्रों के लिए शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक साबित हुआ।

डी.ए.वी. ऊना हिमाचल प्रदेशों में पृथ्वी बचाओ पर्यावरण बचाओ की पहल

सोडीएवी सेनटेनरी पब्लिक स्कूल, ऊना में छात्रों में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता और जिम्मेदारी की भावना पैदा करने के उद्देश्य से 'पृथ्वी बचाओ, पर्यावरण बचाओ' की पहल को अपनाकर आने वाली पीढ़ी को हरित, स्वच्छ और सुरक्षित पृथ्वी का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

प्राचार्य महोदय ने कहा विद्यालय केवल शिक्षा का केंद्र ही नहीं होता, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी और पर्यावरण संरक्षण की भावना विकसित करने का सशक्त माध्यम होता है। इसी संदर्भ में छात्रों को पर्यावरण के प्रति जागरूक करने के लिए विद्यालय में वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है, प्लास्टिक मुक्त अभियान चलाकर छात्रों को प्लास्टिक से बनी चीजों का बहिष्कार करने के लिए प्रेरित किया गया। जल संरक्षण अभियान में छात्रों की सहभागिता को सुनिश्चित की गई।

ईको क्लब का गठन कर पर्यावरण संरक्षण की योजना बनाकर छात्रों में नेतृत्व क्षमता और जिम्मेदारी की भावना को बढ़ाया गया है। पर्यावरण बचाने हेतु जागरूकता रैली एनसीसी व एन.एस.एस. के छात्रों द्वारा निकाल कर आम जन को अधिक पेड़ लगाने का संदेश दिया गया।

आर्य समाज मानव सेवा के 150 स्वर्णिम वर्ष 1875 - 2025

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

हंसराज सेक्टर-6, पंचकूला में हरियाली का संकल्प, आशा का संचार

हंसराज पब्लिक स्कूल, सेक्टर–6, पंचकूला ने 5 जुलाई से 12 जुलाई 2025 तक **'वन महोत्सव सप्ताह'** का उत्साहपूर्वक आयोजन किया। इस सप्ताह का उद्देश्य विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, संरक्षण की भावना तथा सतत जीवन शैली को बढ़ावा देना था।

सप्ताह भर विद्यार्थियों ने पोस्टर निर्माण, कविता पाठ, नारा लेखन और भूमिका–निर्वहन जैसी विविध गतिविधियों में उत्साहपूर्वक भाग लिया। प्रतिदिन की प्रार्थना सभाओं में प्रस्तुत प्रेरणादायक कविताओं और विचारोत्तेजक भाषणों ने विद्यार्थियों में पेड़ों के महत्व, जैव विविधता की रक्षा, तथा जलवायु परिवर्तन से निपटने में सामूहिक सहभागिता के महत्व को रेखांकित किया।

सप्ताह का समापन एक बृहद् वृक्षारोपण अभियान के साथ हुआ जिसमें 500 से अधिक छात्रों ने भाग लिया। इस अवसर पर विद्यालय परिसर एवं औषधीय बगीचे में विभिन्न प्रजातियों के पौधे रोपे गए। कार्यक्रम की गरिमा बढ़ाने हेतु श्री शेखर चंद्र (क्षेत्रीय अधिकारी, सीबीएसई, पंचकूला), सुश्री जसकरण हरिका (प्रबंधक, हंसराज पब्लिक स्कूल), श्रीमती पी. सोफत (उपाध्यक्ष) तथा प्रधानाचार्या श्रीमती जया भारद्वाज उपस्थित रहीं।

इस अवसर पर प्रधानाचार्या श्रीमती जया भारद्वाज ने कहा, "हंसराज में हमारा विश्वास है कि शिक्षा केवल कक्षा तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि यह विद्यार्थियों को उनके समय की वास्तविक चुनौतियों से जोड़ने का सशक्त माध्यम बननी चाहिए। 'वन महोत्सव' केवल एक उत्सव नहीं है, बल्कि यह एक सक्रिय आह्वान है। पेड़ न केवल जीवनदायी हैं, बल्कि वे आशा, संतुलन और सतत विकास के प्रतीक हैं।"

आयोजन ने विद्यार्थियों और शिक्षकों के हृदय में प्रकृति के प्रति नई सोच और संवेदना का संचार किया।

डी.ए.वी. राजगढ़ (हिमाचल प्रदेश) में वैदिक गतिविधियाँ

डी.ए.वी. सैंटनरी महात्मा आनंद स्वामी स्कूल राजगढ़ के प्रांगण में पांच कुंडीय हवन का आयोजन किया गया। आर्य समाज सदस्यों एवं बच्चों के अभिभावकों ने यज्ञ अनुष्ठान में अपनी भागीदारी कर आत्म उत्थान एवं प्रकृति निर्माण में अपना योगदान दिया।

इस अवसर पर उद्गीथ साधना स्थली, डोहर, राजगढ़, के आचार्य विवेक चैतन्य जी ने अंधविश्वासों एवं पाखंडों का विरोध कर सभी आर्यों को जागरूक किया तथा छात्रों के जीवन में अनुशासन व धार्मिक शिक्षा पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के अंत में प्रधानाचार्य जी ने आर्य युवाओं में चरित्र निर्माण एवं नैतिक मूल्यों के उत्थान जैसे प्रेरक प्रसंग द्वारा प्रेरित किया।

आर्यसमाज के प्रचारक श्री के. एल. गुप्ता जी के सौजन्य से एक दिवसीय कार्यशाला का गठन किया गया जिसमें उन्होंने मूल्य उत्थान के साथ–साथ कई अन्य विषयों पर अपने विचार रखे।

छात्र–छात्राओं ने हरिओम गौशाला के लिए हर रोज चपाती सेवा का दान करते हैं। इस का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में गौ सेवा की भावना को उजागर करना है।

पर्यावरण दिवस पर उप मंडलीय विधिक सेवा समिति के अध्यक्ष, अन्य कर्मचारी और आर्य युवाओं द्वारा श्रमदान और पौधारोपण किया गया।

स्कूल के प्रांगण में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया जिसमें आर्य युवा समाज के सदस्यों तथा स्थानीय लोगों ने प्राणायाम, योगासन तथा विभिन्न योग मुद्राओं प्रदर्शन किया।

प्रधानाचार्य श्री विजय वर्मा ने योग के महत्व के बारे में विस्तृत जानकारी देकर उपस्थित लोगों को लाभवान्वित किया।

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. पुष्पिंदर वालिया, उच्च शिक्षा में अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस से सम्मानित

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. पुष्पिंदर वालिया को हाल ही में मोहाली में पंजाब, हरियाणा, हिमाचल द्वारा आयोजित, शिक्षा अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस 2025 के दौरान शिक्षा मंत्री हरजोत सिंह बैंस द्वारा उच्च शिक्षा में अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस से सम्मानित किया गया। पंजाब सरकार के स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा और सूचना एवं जनसंपर्क मंत्री श्री हरजोत सिंह बैंस ने प्रिंसिपल डॉ. वालिया को उनके दूरदर्शी नेतृत्व, समर्पण और उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने में उत्कृष्ट योगदान के लिए प्रतिष्ठित पुरस्कार प्रदान किया।

आभार व्यक्त करते हुए प्रिंसिपल डॉक्टर वालिया ने कहा कि शिक्षकों के पास परिवर्तनकारी बदलाव की कुंजी है। शिक्षक ही अपने विद्यार्थियों को सफल कैरियर के साथ–साथ पूर्ण जीवन के लिए तैयार करते हैं जिसमें नवाचार और संवेदना का मिश्रण होना आवश्यक है।

डॉ. पुष्पिंदर वालिया ने "शिक्षा में मुद्दे, सुधार की ज़रूरतें और कौशल–आधारित शिक्षा की ओर बदलाव" पर एक महत्वपूर्ण चर्चा के दौरान एक प्रतिष्ठित पैनलिस्ट की भूमिका अदा की, जिसमें विद्यार्थियों को आकार देने में शिक्षकों की भूमिका पर उनकी अंतर्दृष्टि की व्यापक रूप से सराहना की गई।

सम्मेलन का समापन भारत के युवाओं के लिए कौशल–आधारित, समग्र और समावेशी शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता के साथ हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**